श्रौत यज्ञ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

श्रौतयज्ञ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

सौरव नौटियाल

एम०ए०, नेट(रहस्यान्त सामवेद)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग : श्री हिमांशु देवडा

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण :2025

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

श्रौतयज्ञ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वेदांगों के ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

भूमिका

वैदिक संस्कृति का प्रथम धर्म यज्ञ है जो सृष्टिनिर्माण व सञ्चालन में सहायक हैं। यज्ञ पाङ्क होता है अर्थात् इसमें पाँच अङ्ग देवता, द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विज, और दक्षिणा होते हैं। वैदिक वाङ्मय में तीन प्रकार की यज्ञ संस्थाएँ प्रतिपादित की गयी हैं-

१. पाकयज्ञ संस्था- इसमें औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिकश्राद्ध, श्रवणा और शूलगव ये सात यज्ञ होते हैं। इनका सम्पादन गृह्य, आवसथ्य, औपासन अथवा स्मार्तअग्नि में किया जाता है।

२. हविर्यज्ञसंस्था- इसमें अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी तथा पिण्डपितृयज्ञ ये सात यज्ञ होते हैं।

३. सोमसंस्था- इसमें अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, वाजपेय तथा अप्तोर्याम ये सात यज्ञ होते हैं।

हविर्यज्ञसंस्था एवं सोमसंस्था के यज्ञ श्रौताग्नियों - गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि तथा सभ्याग्नियों पर सम्पन्न किये जाते हैं।

दर्शपौर्णमासेष्टि श्रौताग्नि में सम्पन्न की जाने वाली हविर्यज्ञसंस्था के अन्तर्गत सम्पाद्य यज्ञ हैं। इसका प्रतिपादन शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में हुआ है। यह अमावस्या एवं पूर्णिमा तिथि से सम्बन्धित यज्ञ है। इसे यावज्जीवन के 30 वर्षों तक प्रत्येक मास में अनवरत सम्पाद्य यज्ञ के रूप माना गया है।

दर्शपूर्णमासेष्टि सभी इष्टियों की प्रकृति है। दर्शपूर्णमासेष्टि दो इष्टियों की सम्मिलित सञ्ज्ञा है। यह एक प्रकृतियाग है जो सपत्नीक यजमान के इहलौकिक एवं पारलौकिक कामनाओं का पूरक है। देवताओं से लेकर पितरों तक को प्रसन्न करता है। मनुष्य को संयमी एवं सत्यव्रती, नियम पारायण, बनाता है। दर्शेष्टि में गोदोहनादि कर्म गौ पालन एवं रक्षण को भी पुरस्कृत करता है। व्यक्ति यावज्जीवन अपना आध्यात्मिक एवं चारित्रिक उन्नयन करे इसकी सिद्धि कराता है। इस यज्ञ के करने उपरान्त ही मनुष्य सोमयागों में अधिकार प्राप्त करता है। यह सृष्टि सञ्चालन में सहायक यज्ञ है। स्वकल्याण से लोककल्याण की प्रेरणा देता है।

कौशल विकास के अन्तर्गत श्रौतयज्ञ सहायक की प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में अग्न्याधान कर्म के उपरान्त श्रौतकर्मों का प्रारम्भिक अग्निहोत्र कर्म दर्शाया गया है। कात्यायनोक्त प्रकार से विधि और कारिका सहित सायं तथा प्रातः अग्निहोत्रहवन कर्म पुस्तक की प्रथम इकाई में रखा गया है। जिससे छात्र मन्त्रोच्चारपूर्वक समस्त अग्निहोत्रविधि का परिज्ञान कर सकें।

इसके पश्चात् सभी सोमयागों के प्रकृतिस्वरूप दर्शपूर्णमास याग का परिचय तथा उसमें होने वाले प्रारम्भिक कर्म यथा- पञ्चभूसंस्कार, इध्म और बर्हि का आहरण, अग्न्यन्वाधान, पात्रासादन, अपां प्रणयन तथा हविर्निर्वाप अथवा हविर्ग्रहण रखे गए हैं। इन सभी कर्मों को भी छात्र सरलता से जान सकें इसलिए विधि से पूर्व परिचय भी दिया है। श्रौतयाग अत्यन्त श्रमसाध्य और दुरूह विषय है, इसको छात्रों के स्तर के अनुसार सरल करने का प्रयास भी किया गया है।

लेखक पाठ्यपुस्तक के त्रुटि सुधार हेतु प्रेषित सिद्धान्त एवं प्रायोगिक आलोचनात्मक समस्त सुझावों के लिए आपका कृतज्ञ होगा।

श्री सौरव नौटियाल

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	इकाई	पृष्ठ संख्या
1.	अग्निहोत्र का परिचय	4-22
2.	दर्शेष्टि के प्रधान याग (परिचय)	23-25
3.	पौर्णमास के प्रधान याग (परिचय)	26-28
4.	पञ्चभू संस्कार	29-32
5.	दर्भ इध्माहरण	33-34
6.	अध्वर्यु द्वारा पात्रासादन	35-47
7.	अपःप्रणयन तथा हविर्निर्वाप	48-51
8.	परिशिष्ट – पौर्णमासेष्टि प्रयोगः	-5290

इकाईः1 अग्निहोत्र परिचय

अग्नि को तृप्त करने के उद्देश्य से श्रौताग्नि पर किया जाने वाला हवन अग्निहोत्रहवन के नाम से प्रसिद्ध है। श्रौत विधि से श्रौताग्नि के ग्रहण करने पर इसका अनुष्ठान किया जा सकता है। **'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः'** इस विधिवाक्य का अनुसरण करते हुए अविनिहोत्री को अग्निहोत्र के द्वारा स्वर्ग रूप इष्ट की साधना करनी चाहिए। एक बार प्रारम्भ करने पर यावज्जीवन उसका निर्वाह करना पड़ता है। इसीलिए इसे नित्यकर्म भी कहते हैं। इस वचन के आधार पर सायङ्काल और प्रातःकाल अग्निहोत्रहवन करना चाहिए।

प्रतिदिन सायङ्काल और प्रातःकाल अग्निहोत्रहवन करना अनिवार्य है। दोनों ही समय के हवन के विषय में भी दो पक्ष है। प्रथम पक्ष में सायङ्काल सूर्यास्त से पूर्व और प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हवन करने का विधान है- **सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहोति। प्रातर्जुहोत्यनुदिते** (का० श्रौ० - ४.१५.१)। द्वितीय पक्ष में सायङ्काल सूर्यास्त के बाद और प्रातःकाल सूर्योदय हो चुकने पर हवन किया जाता है – **तमोभ्यये सायं जुहुयाद्वियति प्रातः** (का० श्रौ० – ४.१५.१२) । इन दोनों पक्षों में से किसी एक का आश्रयण किया जाता है। प्रारम्भ में जो पक्ष स्वीकृत किया हो अन्त तक उसी के अनुसार अनुष्ठान करना आवश्यक है।

अग्निहोत्रहवन से कर्म और हवि दोनों का ग्रहण होता है। इस कर्म का प्रारम्भ सायङ्काल से होता है। सायङ्काल और प्रातःकाल दोनों ही समय यथाविहित समय पर ही हवन होना चाहिए। यही कारण है कि इसमें सङ्कल्प भी इसी आशय का होता है, यथा - **अत्राद्य मासे पक्षे तिथौ वासरे, अमुकगोत्रः अमुकशर्म्माहं मम सपत्नीकस्य आत्मसंस्कारार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायंप्रातरग्निहोत्रहोमं करिष्ये। तत्रामुकद्रव्येण सायं (वा प्रातः) अग्निहोत्रहोमं करिष्ये।** सायङ्काल और प्रातःकाल के अनुष्ठान से एक कृत्य की साङ्गता होती है। सायङ्काल का अग्निहोत्रहवन और प्रातःकालीन अग्निहोत्रहवन ये दोनों मिलाकर एक कर्म कहा है- **सायमादिप्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते** (का० स्मृ० १८.१)। दोनों समय का हविर्द्रव्य और हवन कर्त्ता भी एक ही होना चाहिए।

अग्निहोत्रहवन स्वयं यजमान को ही करना चाहिए। विशेष परिस्थिति में अध्वर्यु भी इसे कर सकता है।

सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमं समाचरेत्। स्वयं होमे फलं यत्स्यान्न तदन्येन जायते॥

होमे यत्फलमुद्दिष्टं जुह्वतः स्वयमेव तु। हूयमाने तदन्येन फलमर्धं प्रजायते ॥ (दे०प० पृ० १३०)

अग्निहोत्रस्य यज्ञक्रतोरेक ऋत्विक्। (बो० श्रौ० २.३)

यदि अध्वर्यु भी उपलब्ध न हो तो पत्नी, पुत्र और शिष्य प्रभृति इस कार्य को करें।

यजमानः प्रधानं स्यात्पत्नीपुत्रश्च कन्यका।

ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ॥

एतैरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव तु। (दे० प० पृ० १३०)

सायङ्काल के समय जिस द्रव्य से हवन किया गया हो प्रातःकाल भी उसी द्रव्य से हवन करना चाहिए। इसी प्रकार सायङ्काल और प्रातःकाल का हवन कर्त्ता भी एक ही होना चाहिए।

हमारे आधिदैविक जगत् में पृथिवी के ऊपर अग्नि का आधान होने के पश्चात् जब मनुष्य उत्पन्न होता है, तो सब से प्रथम दिन और रात की परिवर्तनरूप स्थिति उसके अनुभव में आती है। यह इस आधिदैविक जगत् की सब से छोटी परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी प्रकार अध्यात्म में भी यही दिन-रात का चक्र जागरित और सुषुप्ति (जागना और सोना) रूप में होता है। ये दोनों प्रकार (आधिदैविक और आध्यात्मिक) जगत् की स्वाभाविक परिणति हैं। इसी तत्त्व की व्याख्या ऋषियों ने अग्निहोत्र के रूप में की है।

पूर्व में पढे गए अग्न्याधान में उक्त प्रकार से जिस सपत्नीक यजमान ने अग्नियों का आधान कर लिया है, उस आहिताग्नि पदवाच्य दम्पती को समस्त श्रौतकर्मों के करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार आधिदैविक जगत् में अहोरात्र का कालविभाग सब से छोटा है, उसी प्रकार श्रौतकर्मों में उसका प्रतिनिधिरूप अग्निहोत्र कर्म भी सबसे छोटा है। जिस प्रकार मनुष्य अहोरात्र का अनुभव यावज्जीवन करता है, उसी प्रकार अग्निहोत्र का अनुष्ठान भी यावज्जीवन करना होता है। भट्ट शबरस्वामी ने किसी लुप्त ऋग्वेदीय ब्राह्मण का **'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति'** - यावज्जीवन अग्निहोत्र करे यह वचन मीमांसा २.४.१ के भाष्य में उद्धृत किया है। शतपथ ब्रा० १२.४.१.१ में अग्निहोत्र को **'जरामर्य सत्र'** कहा है। इस कर्म से यजमान तभी मुक्ति पाता है, जब वह अत्यन्त जीर्ण (शिथिल-गात्र) हो जावे, अथवा उसकी मृत्यु हो जावे- **'एतद्वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रम्, जरया ह वा एतस्मान्मुच्यते मृत्युना वा'**। अत एव यह नैत्यिक कर्म माना गया है। अग्निहोत्र रात और दिन में दो बार किया जाता है। दोनों समय का मिलकर एक अग्निहोत्र कर्म होता है।

अग्निहोत्र का आरम्भ आधान कर्म मध्याह्नोत्तर तक समाप्त होता है। तत्पश्चात् अग्निहोत्र का प्राप्त होने वाला काल सायं है। अतः अग्निहोत्र कर्म का आरम्भ सायंकाल से होता है। तत्पश्चात् प्रातः काल उपस्थित होने पर प्रातः कालिक अग्निहोत्र किया जाता है। यजुर्वेद के तृतीय अध्याय में भी पहले सायंकालीन अग्निहोत्र के मन्त्र पढ़े हैं. तदनन्तर प्रातः कालीन अग्निहोत्र के। सायंकाल के आरम्भ करने का कारण अग्निहोत्र का आरम्भसायंकाल से क्यों होता है, इसका दूसरा कारण है- जैसे दिन से पूर्व रात होती है, उसी प्रकार इस सृष्टि-सर्गरूप अह-दिन से पूर्व रात्रि-प्रलयकाल होता है। वर्तमानकाल का भूतकाल के साथ नित्य सम्बन्ध है। अतः सर्ग का व्याख्यान करने से पूर्व प्रलयकाल का व्याख्यान आवश्यक होता है. अन्यथा सर्ग उत्पत्ति का बोध नहीं हो सकता। ऋग्वेद मण्डल १० के नासदीय (१२९ वें) सूक्त में जिसे भाववृत्त (भाव का वर्तन सृष्टि की उत्पत्ति) सूक्त कहा जाता है, उस में भी प्रथम मन्त्र में प्रलयावस्था का वर्णन किया है। हमारे मानव धर्म-शास्त्र जिस का सम्बन्ध उत्पन्न हुए मानवों को उनके कर्तव्यकर्म का बोध कराने से है, उस का आरम्भ भी 'आसीदिदं तमोभूतम्' से होता है। इसी दृष्टि से यजुर्वेद में भी अग्निहोत्र का आरम्भ सायंकालीन अग्निहोत्र से किया है।

अग्निहोत्र नाम का कारण –

'अग्निहोत्र' का अर्थ है- **अग्नये हूयते अस्मिन् तद् अग्निहोत्रम्**- जिस कर्म में अग्नि के लिए होम किया जाता है। यद्यपि अग्निहोत्र कर्म के दो देवता हैं- सायंकालीन कर्म का अग्नि, और प्रातः कालीन कर्म का सूर्य, तथापि इस होमकर्म का आरम्भ सायंकाल से होता है, रात्रि का देवता अग्नि है। मानव रात्रि में अग्नि के सहारे ही कार्य करने में समर्थ होता है, इस कारण उभयकालीन कर्म की संज्ञा अग्निहोत्र रखी गई है।

अग्निहोत्र का काल-

प्रातः कालीन अग्निहोत्र के काल मानव धर्मशास्त्र में तीन कहे हैं- उदित, अनुदित और समयाध्युषित । यथा-

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।

सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ मनु० १.२५॥

उदित काल से अभिप्राय है- जब सूर्य का उदय-दर्शन हो जाये। अनुदित काल वह माना जाता है, जब तक सूर्योदय से पूर्व नक्षत्र दिखाई देते हैं। समयाध्युषित काल वह कहा जाता है, जब नक्षत्रों का

दर्शन बन्द हो जाये, और सूर्य का उदय भी न होवे। यथा-

तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले । रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितं हि तत् ॥

उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में उदित और अनुदित दो कालों में ही अग्निहोत्र करने का उल्लेख मिलता है। इस काल विभाग के अनुसार ऋग्वेदी, शुक्ल यजुर्वेदी और सामवेदी अनुदित काल वाले हैं तथा कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय और मैत्रायणीय शाखा वाले अनुदित होते हैं। प्रातःकालीन अग्निहोत्र के तीन कालों का विधान होने पर भी सायंकालीन अग्निहोत्र सूर्य के अस्त होने पर ही होता है।

अग्निहोत्र कालविषयक संकल्प –

प्रातः कालीन अग्निहोत्र के लिए तीन कालों का विधान होने से अग्निहोत्र आरम्भ करने से पूर्व यजमान को संकल्प करना होता है कि मैं 'सूर्योदय से पूर्व' अथवा 'सूर्योदय के पश्चात्' अथवा 'समयाध्युषित काल में' अग्निहोत्र करूँगा। संकल्प करने के पश्चात् यावज्जीवन संकल्पित काल में ही अग्निहोत्र करना पड़ता है। अन्यथा काल का उल्लङ्घन करने पर वह प्रायश्चित का भागी होता है।

अग्नि का प्रणयन-

अग्नि का प्रणयन गार्हपत्य से अंगारों को उपवेष संज्ञक पात्र में लेकर दक्षिणाग्नि वा आहवनीय में स्थापित करना रूप कर्म सभी पक्षों में सूर्य के उदय वा अस्त काल से पूर्व ही किया जाता है। तदनन्तर उसे प्रज्वलित करके यथाकाल अग्निहोत्र किया जाता है।

प्रतिशाखा कर्मभेद –

प्रतिशाखा अग्निहोत्र कर्म में कुछ-कुछ भेद हैं। यहाँ कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार सामान्य कर्म का निर्देश करते हैं। अग्न्याधान कर्म मध्याह्न तक प्रायः समाप्त हो जाता है। अतः तत्पश्चात् अग्निहोत्र की प्रथम प्राप्ति सायं काल में होती है, तदनन्तर दूसरे दिन प्रातः कालीन अग्निहोत्र प्राप्त होता है। इस प्रकार सायंकालीन और प्रातः कालीन अग्निहोत्र मिलकर एक अग्निहोत्र कर्म होता है। सायंकालीन अग्निहोत्र की देवता अग्नि है। अतः छत्रि-न्याय से दोनों काल के होम की संज्ञा अग्निहोत्र कर्म होता है। अग्निहोत्र के लिए कई हव्य द्रव्यों का उल्लेख मिलता है । उनमें पयः (दूध) द्रव्य प्रधान और सर्व सामान्य माना गया है।

अग्निहोत्र विधिक्रम और सामग्री-

अग्निहोत्रहवन का कार्यकलाप इस प्रकार है-

१. सङ्कल्प

२. पञ्चभूसंस्कार

३. अग्न्युद्धरण

४. आचमन

५. वाग्यमन

६. परिस्तरण

७. परिसमूहन

८. पर्युक्षण

९. अखण्डजलधाराकरण

१०. आहवनीय में हवन

११. हविःशेषभक्षण

१२. आचमन

१३. गार्हपत्य में हवन

१४. दक्षिणाग्नि में हवन

१५. पर्युक्षण

१६. समिदाधान

१७. उपस्थान

१८. वाग्विसर्जन

१९. यज्ञेश्वरार्पण

२०. स्मार्ताग्नि में हवन

अग्निहोत्रहवन की सामग्री इस प्रकार है-

- अग्न्युद्धरण सामग्री

- परिस्तरण
- कूर्च, दर्भ
- समित्
- अग्निहोत्रस्थाली
- अग्निहोत्रहवणी
- स्रुव, उपवेष
- गौ, ग्वाला
- दोहनपात्र
- जलपात्र
- स्मार्तहवन सामग्री।

अग्निहोत्रविधिः

कात्यायनीयः श्रौतः सायम्प्रातरग्निहोत्रहोमप्रयोगः

अथ कर्ता **'स्नात्वाचम्य प्राणानायम्य'** देशकालौ **सङ्कीर्त्य ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीतये उद्धरणपूर्वकममुकद्रव्येण सायम्प्रातरग्निहोत्रं होष्यामि।)** तत्रेदानीं सायमग्निहोत्रं होष्यामीति सङ्कल्प्य। गार्हपत्याग्नेः सभ्यस्य चोद्धरणं कृत्वा आहवनीयकुण्डे दक्षिणाग्निकुण्डे च **'पञ्च-भूसंस्काराः'** कार्याः । **ते यथा-वज्रं गृहीत्वा १ दर्भैः परिसमुह्य २ गोमयोदकेनोपलिप्य ३ वज्रेणोल्लिख्य ४ अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुद्धृत्य ५ उदकेनाभ्युक्ष्य।** ततो गार्हपत्यकुण्डादग्निमाहवनीयदक्षिणाग्निकुण्डयोर्नयेत्। एवं गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निसभ्यसंज्ञकानां चतुर्णां (श्रौताग्नीनां) प्रदीपनं कृत्वानन्तरमावसथ्यस्यो (स्मार्तस्यो)द्धरणं कार्यम्। ततः अन्तरेणाग्निं गत्वा दक्षिणेन वा प्रदक्षिणमाहवनीयं परीत्योपविशति यजमानः पत्नी च यथादेशं (अप आचामत उभौ) **वृष्टिरसि वृश्च मे पाप्मान□सत्येन व्रतमुपैम्यापः सत्यमयी व्रतम्।** ततो **द्विराचमनम्।** (अपरेणाहवनीयं मकराकारकूर्चं निदधाति। ततस्तमाहवनीयाग्निं निबद्धैः कुशपरिस्तरणैः कुशैर्वा पुरस्ताद्दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्च प्रागुदगग्रतः परिस्तीर्य। इतरथावृत्तिः। । एवं गार्हपत्यदक्षिणाग्न्योः परिस्तरणं कार्यम्। पयोहोमे गां धुक्ष्व। गार्हपत्यस्योत्तरतः पृथक्कृतेष्वङ्गारेषु तां

दुग्धस्थालीमधिश्रपति। तृणेनावज्योत्यासिच्यापः पुनरवज्योत्य त्रिरुद्वासयत्युदक्। तण्डुलहोमे तु गां धुक्ष्वेत्यादेरभावः। आदौ गार्हपत्यस्य पर्युक्षणम्। गार्हपत्यादुदकधारां निनयत्याहवनीयम्। आहवनीयं पर्युक्ष्य। वैकङ्कत□स्रुक्स्रुवं प्रतप्य। पाणिना संमार्ष्टि। पुनः प्रतप्य।) **उन्नेष्यामि ॐ उनय।** (यजमानस्तिष्ठन्। चतुरः स्रुवानुन्नयति। प्रथमः। द्वितीयः। तृतीयः। चतुर्थः। स्रुग्दण्डोपरि समिधं धारयन्नुत्थाय। अध्यधि गार्हपत्यादाहवनीय□हरति। मुखमात्रे धारयन्। मध्ये निगृह्य। उद्गृह्य। उपविश्य। समिधमादधाति।) अग्निं ज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवती□ स्वर्ग्या□ स्वर्गायोपदधामि भास्वती। प्रदीतामभिजुहोति। दक्षिणं जान्वाच्य – **ॐ सजूर्देवेन। सवित्त्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्त्या। जुषाणोऽअग्निर्व्वेतु स्वाहा** ॥(चतुर्थांशं हुत्वा) **इदमग्नये न मम।** (स्रुचं कुशेषु निधाय गार्हपत्यमवेक्षते । होष्यन्यसिस्मिन् उत्तरां भूयसीम्)। **ॐ उपांशु प्रजापतये उच्चैः स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम** । (स्रुचं द्विः प्रकम्प्य कूर्चे निदधाति) **ॐ नमो देवेभ्यः। ॐ स्वधा पितृभ्यः।** (अप उपस्पृश्य इतरयोश्च पुष्टिकामः स्थाल्याः स्रुवेण)। **ॐ इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजाꣳ रमयतु प्रजापतिः। अग्नये गृहपते रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा । इदमग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम** । दक्षिणाग्नौ (तूष्णीं समित्प्रक्षेपः)। **ॐ अग्नयेऽन्नादायान्नपतये स्वाहा। इदमग्नयेऽन्नादायान्नपतये न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम** ॥ (स्रुचिस्थं हुतद्रव्यशेषं पात्रान्तरे गृहीत्वा । भक्षणार्थं बहिर्गत्वा अनामिकया द्विः प्राश्नाति । पात्रस्यास्वादनं (उत्सृज्य निर्लेढि) । आचम्य द्विः। आहवनीयसमीपमागत्य स्रुच्युदकं पूरयित्वा। उत्सिञ्चति । आहवनीयोत्तरतः) **ॐ देवाञ्जिन्व।** (पुनः पूर्य) **ॐ पितॄञ्जिन्व।** (दक्षिणतः पुनः पूर्य। उदुक्षति)। **ॐ सप्तऋषीन्जिन्व।** (ईशान्ये पुनः पूर्य। कुशेपु स्थाने त्रिर्निषिञ्चति प्राक्संस्थम्)। **ॐ अग्नये पृथिवीक्षिते स्वाहा। ॐ पृथिव्याऽमृतं जुहोमि स्वाहा। ॐ अमृतेऽअमृतं जुहोमि स्वाहा॥** (स्रुक्स्रुवमाहवनीये प्रतप्य । कुशेषु निदधाति । समिधमादधाति । सर्वेषु यथा पर्युक्षितम्) । **ॐ समिदसि समिद्धोमे अग्ने दीदिहि समिद्धाते ऽअग्ने दीद्यासम्॥** (आहवनीयसमीपमागत्य तिष्ठन्। आदौ गार्हपत्यस्योपस्थानम्)॥ 'उपस्थानम्'- **ॐ भूर्भुवस्वः। सुप्रजाः। प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो। व्वीरैः। सुपोषः। पोषैः॥** (उपविश्य)। **महेन्द्रादाहवनीयाय नमः** । (गार्हपत्ये)। **ॐ भूर्भुवस्वः। सुप्रजाः। प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो। व्वीरैः। सुपोषः। पोषैः॥** (शय्यासनम्। वा गार्हपत्ये) **ॐ यमाय राज्ञे गार्हपत्याय नमः।** (ततः पूर्ववत् धारावर्ज्यम्) (पर्युक्षणम्) वाग्विसर्जनम्

(उभौ स्वासने उपविश्य । आचम्य ।) **ॐ विद्युदसि विद्य मे पाप्मानं जह्यपोवभृथमभ्युपैमि मयि स त्वङ्गोपु मे व्रतम्। द्विराचम्य। विष्णवे नमः ।** सञ्चरविमोकः। (गार्हपत्यपश्चादुपविश्य) **ॐ नडाय नैषधाय अन्वाहार्यपचनाय नमः। अनथुते साङ्गमनाय सभ्याय नमः। असते पांसुपाय भस्मोद्वापाय नमः॥ नर्यभस्य परब्रह्म यतो मुक्तिप्रसाधकम्। तयोरेकतरं सेव्यं संसारभयनाशनम्॥ यत्कर्मणात्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निꣳ स्विष्टकृद्विद्वान्स्विष्टꣳ सुहुतं करोतु स्वाहा॥ नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये। नमऽआहवनीयाय महावेद्यै नमो नमः॥ नमः सभ्यावसथ्याभ्यां नमस्ते परमात्मने। विश्वबोधप्रबोधाय नमस्ते श्रौतवह्नये॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। नूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥ 'अर्पणम्'- अनेन** (यजमानानुज्ञया) **अमुकद्रव्येण श्रौतसायंहोमाख्येन कर्मणा भगवान् श्रीयज्ञपुरुषः प्रीयतां न मम ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ 'विशेषप्रार्थना'-ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥ त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपाऽअदाभ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन्॥ तद्विष्णोः परमम्पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳ सꣳ समिन्धते। विष्णोर्य्यत्परमम्पदम्॥ विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥** (भस्म ललाटे धारयेत्)। **ॐ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः। नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥**

इति श्रौतः सायंहोमप्रयोगः

अथ श्रौतः प्रातर्होमप्रयोगः

(स्नानं कृत्वा) **'पञ्चभूसंस्काराः'- वज्रं गृहीत्वा। दर्भैः परिसमुह्य। गोमयोदकेनोपलिप्य ।वज्रेणोल्लिख्य। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुद्धृत्य। उदकेनाभ्युक्ष्य।** इदमाहवनीयस्य। (एवं दक्षिणाग्नेः)। **उद्धरेति** (यजमानो ब्रूयात्)। (आचम्य। सुमुखश्चेत्यादि०। देशकालौ सङ्कीर्त्य) यथा- **सङ्कल्पः- ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीतये उद्धरणपूर्वकममुकद्रव्येण प्रातरग्निहोत्रं होष्यामि॥ 'उद्धरणम्'** -(अन्तरेणापराग्निं गत्वा दक्षिणेन वा प्रदक्षिणमाहवनीयपरीत्योपविशति। यजमानः पत्नी च यथादेशम्। अप आचामत उभौ) **वृष्टिरसि वृश्च मे पाप्मानꣳ सत्येन व्रतमुपैम्यापः सत्यमयी व्रतम्।** ततो **द्विराचमनम्।** अपरेणाहवनीयं कूर्चं

निदधाति। आहवनीयस्य परिस्तरणम् । कुशैः परिस्तरणैर्वा पुरस्ताद्दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्च प्रागग्रमुदगग्रं च परिस्तीर्य। एवं गार्हपत्यदक्षिणाग्न्योः परिस्तरणम्। **'पयोहोमे'** गां धुक्ष्व । तण्डुलहोमे गां धुक्ष्वेत्यादेरभावः। (केचितु उदकधारां निनयन्ति)। गार्हपत्यस्योत्तरतः पृथक्कृतेष्वङ्गारेषु तां दुग्ध-स्थालीमधिश्रपयति। तृणेनावज्योत्य । आसिञ्च्यापः। पुनरवज्योत्य। त्रिरुद्वासयत्युदक्। ततो गार्हपत्यस्य पर्युक्षणम् । ततो दक्षिणाग्नेः पर्युक्षणम्। गार्हपत्यादुदकधारां निनयत्याहवनीयम्। आहवनीयं पर्युक्ष्य। वैकङ्कत□स्रुक्स्रुवं प्रतप्य। पाणिना संमार्ष्टि। पुनः प्रतप्य।) **उन्नेष्यामि ॐ उनय।** (यजमानस्तिष्ठन्। चतुरः स्रुवानुन्नयति। प्रथमः। द्वितीयः। तृतीयः। चतुर्थः। स्रुग्दण्डोपरि समिधं धारयन्नुत्थाय। अध्यधि गार्हपत्यादाहवनीयꣳहरति। मुखमात्रे धारयन्। मध्ये निगृह्य। उद्गृह्य। उपविश्य। समिधमादधाति।) **सूर्यो ज्योतिषं त्वा वायुमतीं स्वर्ग्याꣳ स्वर्गायोपदधामि भास्वती। प्रदीप्तामभिजुहोति॥** (दक्षिणं जान्वाच्य)। **ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चो ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो वर्च्चो ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः खाहा॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्त्या। जुषाणः सूर्य्यो व्वेतु स्वाहा॥** चतुर्थांशं हुत्वा। **इदं सूर्याय न मम।** (स्रुचं कुशेषु निधाय गार्हपत्यमवेक्षते । होष्यन्यसिस्मिन् उत्तरां भूयसीम्)। **ॐ उपांशु प्रजापतये उच्चैः स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम** । (स्रुचं द्विः प्रकम्प्य कूर्चे निदधाति) **ॐ नमो देवेभ्यः। ॐ स्वधा पितृभ्यः।** (अप उपस्पृश्य इतरयोश्च पुष्टिकामः स्थाल्याः स्रुवेण)। **ॐ इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजा□ रमयतु प्रजापतिः। अग्नये गृहपते रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा । इदमग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम** । दक्षिणाग्नौ (तूष्णीं समित्प्रक्षेपः)। **ॐ अग्नयेऽन्नादायान्नपतये स्वाहा। इदमग्नयेऽन्नादायान्नपतये न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम ॥** (स्रुचिस्थं हुतद्रव्यशेषं पात्रान्तरे गृहीत्वा । भक्षणार्थं बहिर्गत्वा अनामिकया द्विः प्राश्नाति । पात्रस्यास्वादनं (उत्सृज्य निर्लेढि) । आचम्य द्विः। आहवनीयसमीपमागत्य स्रुच्युदकं पूरयित्वा। उत्सिञ्चति । आहवनीयोत्तरतः) **ॐ देवाञ्जिन्व।** (पुनः पूर्य) **ॐ पितॄञ्जिन्व।** (दक्षिणतः पुनः पूर्य। उदुक्षति)। **ॐ सप्तऋषीन्जिन्व।** (ईशान्ये पुनः पूर्य। कुशेपु स्थाने त्रिर्निषिञ्चति प्राक्संस्थम्)। **ॐ अग्नये पृथिवीक्षिते स्वाहा। ॐ पृथिव्याऽमृतं जुहोमि स्वाहा। ॐ अमृतेऽअमृतं जुहोमि स्वाहा॥** (स्रुक्स्रुवमाहवनीये प्रतप्य । कुशेषु निदधाति । समिधमादधाति । सर्वेषु यथा पर्युक्षितम्) । **ॐ समिदसि**

समिद्धोमे अग्ने दीदिहि समिद्धाते ऽअग्ने दीद्यासम्॥ (आहवनीयसमीपमागत्य तिष्ठन्। आदौ गार्हपत्यस्योपस्थानम्)॥ 'उपस्थानम्'- **ॐ भूर्भुवस्वः। सुप्रजाः। प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो। व्वीरैः। सुपोषः। पोषैः॥** (उपविश्य)। **महेन्द्रादाहवनीयाय नमः** । (गार्हपत्ये)। **ॐ भूर्भुवस्वः। सुप्रजाः। प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो। व्वीरैः। सुपोषः। पोषैः॥** (शय्यासनम्। वा गार्हपत्ये) **ॐ यमाय राज्ञे गार्हपत्याय नमः।** (ततः पूर्ववत् धारावर्ज्यम्) (पर्युक्षणम्) वाग्विसर्जनम् (उभौ स्वासने उपविश्य । आचम्य ।) **ॐ विद्युदसि विद्य मे पाप्मानं जह्यायपोवभृथमभ्युपैमि मयि स त्वङ्गोपु मे व्रतम्। द्विराचम्य। विष्णवे नमः** । सञ्चरविमोकः। (गार्हपत्यपश्चादुपविश्य) **ॐ नडाय नैषधाय अन्वाहार्यपचनाय नमः। अनथुते साङ्गमनाय सभ्याय नमः। असते पांसुपाय भस्मोद्वापाय नमः॥ नर्यभस्य परब्रह्म यतो मुक्तिप्रसाधकम्। तयोरेकतरं सेव्यं संसारभयनाशनम्॥ यत्कर्मणात्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निꣳ स्विष्टकृद्विद्वान्स्विष्टꣳ सुहुतं करोतु स्वाहा॥ नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये। नमऽआहवनीयाय महावेद्यै नमो नमः॥ नमः सभ्यावसथ्याभ्यां नमस्ते परमात्मने। विश्वबोधप्रबोधाय नमस्ते श्रौतवह्नये॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। नूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥** 'अर्पणम्'- अनेन (यजमानानुज्ञया) **अमुकद्रव्येण श्रौतसायंहोमाख्येन कर्मणा भगवान् श्रीयज्ञपुरुषः प्रीयतां न मम ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥** 'विशेषप्रार्थना'-**ॐ इदं व्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥ त्रीणिपदा व्विचक्रमे व्विष्णुर्ग्गोपाऽअदाभ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन्॥ तद्विष्णोः परमम्पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो व्विपन्यवो जागृवाꣳ सꣳ समिन्धते। विष्णोर्य्यत्परमम्पदम्॥ व्विष्णोरराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रेस्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्ध्रुवोसि। व्वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा॥ त्रायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥** (भस्म ललाटे धारयेत्)। **ॐ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः। नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥**

इति श्रौतप्रातर्होमप्रयोगः

होम, याग तथा इष्टि

समस्त श्रौतयाग इष्टि, पशु और सोम भेद से तीन प्रकार विभक्त है। दर्शपूर्णमास के परिचय और अध्ययन

में हम होम, याग एवम् इष्टि इन तीन पदों को बार बार पढेंगे, अतः पूर्व ही उनका परिज्ञान कर लेना चाहिए।

होम का लक्षण –

'**उपविष्टहोमाः स्वाहाकारप्रदाना जुहोतयः**' (कात्या० श्रौत १.२.७) अर्थात् जिस में बैठ कर '**स्वाहा**' शब्द से आहुति दी जाये, वह **होम** होता है। इस के लिए **जुहोति, जुहुयात्** शब्दों का प्रयोग होता है। यथा **अग्निहोत्रं जुहोति** (तै०सं० १.५.९) ।

याग का लक्षण –

'**तिष्ठद्धोमा वषट्कारप्रदाना याज्यापुरोऽनु-वाक्यावन्तो यजतयः** ' (कात्या० श्रौत १.२.६) अर्थात् जिस में खड़े होकर **वषट्** या **वौषट्** शब्द से आहुति दी जाये, जिनमें **पुरोऽनुवाक्या** और **याज्या** मन्त्र होवें, उन्हें **याग** कहते हैं। इसके लिए **यजेत** शब्द का प्रयोग होता है। यथा- **दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत** (आप० श्रौत ३.१४.८) ।

इष्टि का लक्षण-

समस्त हविर्यागों को **इष्टि** पद से ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु याज्ञिक सम्प्रदाय में समस्त हविर्यज्ञों के प्रकृतिभूत दर्श-पौर्णमासयाग को ही इष्टि शब्द से जाना जाता है। सपत्निक यजमान एवं ऋत्विक् चतुष्टय द्वारा सम्पादित कर्म को इष्टि कहते हैं। इष्टि और याग पर्यायवाची ही है। **यजनाद् यागः। इज्यतेऽनेन कर्मणेतीष्टिः।** अगर भेद दृष्टि से देखा जाय तो याग बहु ऋत्विक् एवं एकाधिक दिनसाध्य पूर्वोक्त याग परिभाषा युक्त कर्म विशेष को कह सकते हैं। जैसे सोम याग, चयन याग आदि। इष्टि एक दिन साध्य है।

दर्शपूर्णमास का परिचय –

आधिदैविक जगत् में प्रतिदिन दिन और रात के रूप में जो परिवर्तनशील दृश्य प्राणिमात्र से गृहीत होता है, उसके पश्चात् प्राणिमात्र से परिगृहीत होने वाला जो विशेष परिवर्तन होता है, वह है रात्रि में प्रकाश और अन्धकार के रूप में उपस्थित होने वाला दृश्य। यह परिवर्तन प्रतिदिन होते हुए भी पन्द्रह-पन्द्रह दिनों के दो विभागों में विभक्त होता हुआ पूर्णता को प्राप्त हुआ जाना जाता है। इन का लोक में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के रूप में व्यवहार होता है। अमावास्या की पूर्ण अन्धेरी रात के पश्चात् शुक्ल

पक्ष में सूर्यास्त के पीछे क्रमशः प्रकाश की मात्रा तथा समय बढ़ता जाता है, और पूर्णिमा की रात में पूर्णचन्द्र का प्रकाश होता है और सारी रात प्रकाश रहता है। इसी प्रकार पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण पक्ष में चन्द्रोदय क्रमशः दो-दो घड़ी (४८ मिनट) देर से होता है, और उसके प्रकाश की कलाएं शनैः शनैः लुप्त होने से अन्धकार की मात्रा बढ़ते-बढ़ते अमावस्या की रात में पूरा अन्धकार होता है। उस दिन चन्द्रोदय सूर्योदय के साथ होता है। इसीलिए '**अमा सह वसतः सूर्यचन्द्रमसौ यस्यां सा अमावास्या अमावस्या वा**' (काशिका वृत्ति, अष्टा० ३.१.१२२)।

इसी आधिदैविक घटना चक्र के परिज्ञापन के लिए दर्शपूर्णमास संज्ञक कर्म का शास्त्रकारों ने वर्णन किया है। अग्निहोत्र जैसे सायं प्रातः का मिलकर एक कर्म होता है, इसी प्रकार यद्यपि दर्शेष्टि और पौर्णमासेष्टि मिलकर एक कर्म नहीं होता है तथापि दोनों के अपूर्वी से एक अपूर्व की उत्पत्ति होकर उससे फल की प्राप्ति होती है। इसीलिए '**दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत**' विधि वचन में **दर्शपूर्णमासाभ्याम्** में द्विवचन से निर्देश किया है। पूर्णिमा और अमावस्या चन्द्रकला तथा प्रकाश के बढ़ने घटने की सीमारूप हैं। शेष १४ रात्रियों में बढ़ना घटना क्रिया प्रत्यक्ष परिगृहीत होती है। इसलिए दर्शपूर्णमास में १३-१४ आहुतियां मुख्य होती हैं। दोनों में तीन-तीन प्रधानाहुतियाँ हैं, शेष ११ अङ्गरूप आहुतियाँ होती हैं। पौर्णमासेष्टि में मुख्य हवि **आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश, अग्नीषोम देवताक घृत** और **अग्नीषोमीय एकादशकपाल पुरोडाश** है। दर्शेष्टि में **आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश, इन्द्र देवताक दही** और **इन्द्रदेवताक पयः** होता है। यतः दही और दूध दोनों हवियों का देवता एक है, अतः दोनों को मिलाकर एक बार ही दोनों की आहुति दी जाती है। इस प्रकार स्थूल दृष्टि से दर्शेष्टि में १३ आहुतियाँ होती हैं। यही निर्देश भगवान् जैमिनि ने संकर्ष काण्ड २.२.३० (पूर्व-मीमांसा १८.२.३०) में किया है- **चतुर्दश पौर्णमास्यामाहुतयो हूयन्ते, त्रयोदश अमावास्यायाम् इति**।

दर्शपूर्णमास सब यागों की प्रकृति –

संहिता, ब्राह्मण और श्रौतसूत्रों के अनुसार दर्शपूर्णमास को सब यागों की प्रकृति माना है। अतः यागों में सामान्य रूप से होने वाले सभी कर्मों का दर्शपूर्णमास में पूर्ण रूप से निर्देश किया गया है। उत्तर यागों में जो-जो भिन्नता वा अधिकता होती है, उतने अंश का ही निर्देश किया है। शेष सभी अविरुद्ध विधियाँ '**प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्या**' रूप अतिदेश से चातुर्मास्यादि उत्तर यागों में उपस्थित हो जाती हैं।

दर्शपूर्णमास के आरम्भ में विकल्प –

हम पिछले वर्ष के पाठ्यक्रम में आधान का **होमपूर्वाधान, सोमपूर्वाधान** और **इष्टिपूर्वाधान** के रूप में त्रिविधत्व पढ चुके हैं। इसी प्रकार यहाँ एक पक्ष में आधान के अनन्तर सोमयाग करके दर्शपूर्णमास किया जाता है तो दूसरे पक्ष में आधान के अनन्तर दर्शपूर्णमास आरम्भ कर के जब यजमान की सोमयाग करने की इच्छा वा सामर्थ्य हो, तब सोमयाग किया जाता है। इन दोनों पक्षों में दर्शेष्टि की हवि में अन्तर पड़ता है।

सोमयाजी की दर्शेष्टि की हवि-

दोनों पक्षों में आग्नेय पुरोडाश तो समान है, परन्तु शेष दो हव्य-द्रव्यों में अन्तर है। सोमयाजी अर्थात् जिस ने पहले सोमयाग किया है उसकी हवि **ऐन्द्र दधि** और **ऐन्द्र पयः** होती है। दर्शपूर्णमास के अनन्तर यजमान जब सोमयाग कर लेता है तो उसके पीछे दधि और पय ही हव्य द्रव्य होते हैं। दूध और दहि रूप जो हवि हैं, इनका शास्त्रीय नाम सान्नाय्य है। अतः कात्या० श्रौत ४.२.२५ में कहा है- **सोमयाजी सन्नयेत** । तै० सं० २.५.५ में असोमयाजी के लिए सान्नाय्य हवि का प्रत्यक्ष निषेध किया है- **नासोमयाजी सन्नयेत्**।

सान्नाय्य शब्द का अर्थ भगवान् पाणिनि ने हवि विशेष के अर्थ में सान्नाय्य शब्द **'पाय्य सान्नाय्य निकाय्यधाय्या मानहविर्निवास सामिधेनीषु'** (अष्टा० ३.१.१२९) सूत्र में निपातन किया है। इस शब्द में सम् उपसर्ग पूर्वक 'णीञ् प्रापणे' से ण्यत् प्रत्यय (सम् नी ण्यत् सम् नै य) में ऐकार को आय् आदेश और उपसर्ग को दीर्घत्व कहा है (साम् नाय् य सान्नाय्य)। इसका अर्थ होता है- अच्छे प्रकार इकट्ठी जो हवि दी जाती है, वह हवि सान्नाय्य कहाती है। ऐन्द्र दधि और ऐन्द्र पय दोनों द्रव्यों का एक देवता होने से दोनों को मिला कर इन्द्र के लिए दिया जाता है। अतः एव यह हवि सान्नाय्य कहाती है।

असोमयाजी की दर्शेष्टि की हवि-

जो आधान के पश्चात् सोमयाग बिना किये ही दर्शपूर्णमास आरम्भ करता है, उसकी **आग्नेय पुरोडाश** के अतिरिक्त **ऐन्द्राग्न द्वादशकपाल पुरोडाश** और कतिपय वाजसनेयी तथा शाङ्खायन शाखाओं के अनुसार **वैष्णव** अथवा **अग्नीषोमीय उपाँशुयाज** भी होता है। मीमांसा १०.८.५८ में दर्शेष्टि में उपाँशुयाज का प्रतिषेध कहा है।

दर्श शब्द का अर्थ-

इसकी व्युत्पत्ति **'कदाचिद् दृश्यते चन्द्रोऽत्र'** अर्थात् कदाचित् (जब चतुर्दशी भूयिष्ठ होने पर अमावस्या आरम्भहोती है तब) प्रातः सूर्योदय से पहले पूर्व दिशा में चन्द्र की सूक्ष्म रेखा दिखाई पड़ती है।

कर्म का आरम्भ-

अग्न्याधान के प्रकरण में पढ चुके हैं कि अग्न्याधान अमावस्या के दिन अथवा पूर्णिमा में किया जाता है। अतः यदि अमावस्या को आधान किया है तो अगली पूर्णिमा को पौर्णमासेष्टि की जाती है, तत्पश्चात् दर्शेष्टि। किन्तु यदि आधान पूर्णिमा को किया है तो उत्तर प्राप्त अमावस्या में दर्शेष्टि न करके अगली पूर्णिमा से कर्म का आरम्भ करते हैं। अर्थात् दर्शपूर्णमास में पौर्णमासेष्टि प्रथम है और दर्शेष्टि औत्तरकालिक। इस नियम का कारण सम्भवतः अमान्त मास मानना है। उत्तर भारत में पहले कृष्ण पक्ष माना जाता है और द्वितीय शुक्ल पक्ष अर्थात् पूर्णिमा पर मास समाप्त करते हैं। परन्तु गुजरात आदि प्रदेशों में पहले शुक्ल पक्ष होता है, और अन्त में कृष्ण पक्ष अर्थात् अमावस्या को महीना पूर्ण होता है। चाहे उत्तर भारत का पंचाङ्ग होवे चाहे दाक्षिणात्य, दोनों में पूर्णिमा का संकेत १५ संख्या से किया जाता है और अमावस्या का ३० संख्या से। यह संकेत भी इस बात का ज्ञापक है कि प्राचीन काल में पहला पक्ष शुक्ल पक्ष और दूसरा कृष्यण पक्ष होता था। इसलिए इस कर्म को पौर्णमासेष्टि से ही आरम्भ करते हैं।

दर्शपूर्णमास में कुछ याग है और कुछ होम। याग अथवा इष्टि तथा होम के विषय में हम पूर्व पाठ में जान चुके हैं।

पुरोऽनुवाक्या और याज्या –

याग में जिस देवता के लिए आहुति दी जाती है उस देवता वाली दो ऋचाओं में पहली ऋचा को **पुरोऽनुवाक्या** (पहले बोली जाने वाली ऋचा) कहते हैं और उसके पश्चात् जिस से आहुति दी जाती है, उसे **याज्या** कहते हैं। याज्या के अन्त में 'वौषट्' शब्द जोड़कर आहुति दी जाती है।

दर्शपूर्णमास का द्वैविध्य –

दर्शपूर्णमास **नित्य** और **काम्य** (कामना के लिए) भेद से दो प्रकार का है। भिन्न-भिन्न कामनाओं के लिए नित्य विहित कर्म में ही साधारण परिवर्तन कर दिया जाता है।

दर्शपूर्णमास याग करने की अवधि –

नित्य दर्शपूर्णमास यावज्जीवन करना होता है। परन्तु अति जरावस्था में कर्म करने में असमर्थ हो जाये तो उसकी परिसमाप्ति भी की जा सकती है। इस अर्थ को कहने वाली श्रुति मीमांसाभाष्यकार शबरस्वामी ने (मी० २.४.४) इस प्रकार उद्धृत की है-**जरामर्यं वा एतत् सत्रं यद् अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ च। जरया ह वा एतस्मान्मुच्यते मृत्युना वा** अर्थात् अग्निहोत्र तथा दर्शपूर्णमास जरामर्य सत्र (निरन्तर जारी रहने वाले कर्म) हैं। इनसे वृद्धावस्था से छुटकारा होता है अथवा मृत्यु से। इस कर्म का अनुष्ठान तीस वर्ष तक निरन्तर करने के पश्चात् परित्याग भी माना गया है- **त्रिंशतं वर्षाणि दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत** (शत० ११.१.२.१३)। इस श्रुति का तात्पर्य दर्शपूर्णमास के प्राशस्त्य दर्शाने में है। तीस वर्ष वाला पक्ष सभी अवस्था में कर्म के परित्याग का विधायक है। जो यजमान दर्शपूर्णमास के साथ दाक्षायण याग भी करता है, वह पन्द्रह वर्ष के पश्चात् परित्याग कर सकता है- **यद्यु दाक्षायणयाजी स्यादथो अपि पञ्चदशैव वर्षाणि यजेत । अत्रैव सा सम्पत् सम्पद्यते** (शत० ११.१.२.१३)।

याग का अनुष्ठानकाल-

दर्श और पौर्णमास कर्म का मुख्य काल अमावस्या वा पूर्णिमा और प्रतिपदा का सन्धिकाल है। परन्तु जब यह सन्धिकाल मध्याह्नोत्तर वा रात्रि के समय में आता है, तब मध्याह्नोत्तर वा रात्रि में कर्म का प्रतिषेध होने से दूसरे दिन (प्रतिपदा को) प्रातः अनुष्ठान किया जाता है। दर्शेष्टि में दधिरूप हवि के लिए प्रथम दिन गोदोहनादि कर्म करने आवश्यक हैं। अतः सामान्यतया दोनों कर्मों के व्रत ग्रहण आदि कर्म प्रथम दिन (अमावास्या और पूर्णिमा के दिन) प्रातः किये जाते हैं, और मुख्य कर्म प्रतिपदा के दिन प्रातः । शास्त्रकारों के मतानुसार पूर्णमासेष्टि के सभी कर्म प्रतिपदा के दिन ही किये जा सकते हैं- **सद्यो वा प्रातः** (कात्या० श्रौत २.१.१६) ।

सामान्य नियम - जहाँ पर हव्य द्रव्य तथा देवता का विकल्प होवे, यथा-व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा- व्रीहि (धान) से याग करे, वा जौ से, तथा विष्णुरुपांशु यष्टव्योऽग्नीषोमौ वा (दर्शेष्टि में विष्णुदेवता का उपांशुयाग करे, अथवा अग्नीषोमदेवताक वाजसनेयों तथा शांखायनों के मत में) - ऐसे विकल्प के विषय में प्रथम याग के समय ही एक द्रव्य वा देवता का संकल्प करना होता है, और आगे यावज्जीवन उसी के अनुसार कर्म करना होता है।

मन्त्र-पाठ का प्रकार-

यज्ञ में पढ़े जाने वाले मन्त्रों के विषय में सामान्य नियम यह है कि जप-मन्त्र, न्यूंख (न्यूंखसंज्ञक १६ ओंकार हैं। उनमें कुछ उदात्त हैं, कुछ अनुदात्त - आश्वलायन श्रौत ७.११). और साममन्त्र सस्वर पढ़े जाते हैं, और अन्य मन्त्र एकश्रुति से - **यज्ञकर्मण्यजपन्यूंखसामसु** (अष्टा० १.२.३४); **एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ यज्ञकर्मणि, सुब्रह्मण्यासामजपन्यूंखयाजमानवर्जम्** (कात्या० श्रौत १.८.१९) अर्थात् यज्ञकर्म में एकश्रुति होती है, सुब्रह्मण्या साम, जप, न्यूंख तथा यजमान सम्बन्धी मन्त्रों को छोड़कर। तैत्तिरीय अध्वर्यु से पठ्यमानमन्त्रों को चातुःस्वर्य (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, एकश्रुति) से पढ़ते हैं। होता से पढ़े जाने वाले मन्त्र एकश्रुति से पढ़े जाते हैं। शेष पूर्ववत्। जप नाम उन मन्त्रों का है, जिनसे कोई कर्म नहीं किया जाता है, केवल पाठमात्र होता है। सुब्रह्मण्या नाम का एक निगद (मन्त्रसमूह) है। यह सोमयाग में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार होता से उच्चार्यमाण ऋङ्मन्त्र ऊंचे स्वर से बोले जाते हैं, उद्गाता से गीयमान सामगान भी उच्चैः उच्चारण किया जाता है। अध्वर्यु से पठ्यमान याजुष मन्त्र उपांशु (इतनी न्यून ध्वनि से बोलना जिस से समीपस्थ व्यक्ति भी स्पष्ट न सुन सके) बोले जाते हैं। उच्चैर्ऋचा क्रियते उच्चैः साम्ना उपांशु यजुषा (मैत्रा० सं० ३.६.५)। अध्वर्यु से पठ्यमान प्रैष मन्त्र उच्चैः पढ़े जाते हैं, क्योंकि प्रैष कर्म करने के लिए आज्ञा वा अनुज्ञा देने के लिए प्रैष मन्त्रों का उच्चैः प्रयोग आवश्यक है। यदि साथी प्रैष सुनेगा ही नहीं तो वह कर्म कैसे करेगा? याज्या मन्त्र के अन्त में उच्चार्यमाण वौषट् शब्द याज्या मन्त्र से भी अधिक ऊंचे से बोला जाता है- **उच्चैस्तरां वा वषट्कारः** (अष्टा० १.२.३५)।

दर्शपूर्णमास के ऋत्विक्-

दर्शपूर्णमास कर्म में **ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता** और **अग्नीत्** चार ऋत्विक् होते हैं- **दर्शपूर्णमासयोर्यज्ञक्रतोश्चत्वार ऋत्विजः** (तै० ब्रा० २.३.६.२) ।

ऋत्विजों का कार्य-

यज्ञ में जितनी आहुतियां दी जाती हैं, उन्हें होता देता है- जुहोतीति होता। होता का सम्बन्ध ऋग्वेद से होता है, अतः ऋग्वेद की संज्ञा हौत्रवेद भी है। शेष जितना यज्ञीय कर्म होता है, उसे अध्वर्यु पूर्ण करता है। अध्वर्यु का सम्बन्ध यजुर्वेद के साथ है, अतः वह आध्वर्यव वेद कहाता है। अग्नीत् नामा ऋत्विक् अध्वर्यु का सहायक होता है। ब्रह्मा सारे कर्म का द्रष्टा होता है। कर्म में भूल-चूक होने पर उस का निदर्शक होता है-**यज्ञस्य हैष भिषग् यद् ब्रह्मा** (ऐ० ब्रा० ५.३४) अर्थात् ब्रह्मा यज्ञ का भिषक् चिकित्सक भूल-चूक को पूर्ण करने हारा होता है। इसलिए ब्रह्मा को ऋक् यजुः साम तीनों वेदों का जानने वाला होना चाहिये-

अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति ? त्रय्या विद्ययेति (ऐ० ब्रा० ५.३३; शत० ब्रा० ११.५.८.७) ।

इकाईः 2 दर्शेष्टि के प्रधान याग (परिचय)

दर्शेष्टि में प्रधान याग

दर्श इष्टि में दो देवताओं को आहुति दी जाती है, जो **अग्नि** तथा **इन्द्र** हैं। सान्नाय्य इष्टि के देवता **अग्नि, इन्द्र, सोम** तथा विकल्प में **विष्णु** देवता है।

दर्श इष्टि को दो भागों में जाना जाता है -(१) **सान्नाय्य इष्टि,** और (२) **असान्नाय्य इष्टि।**

सान्नाय्य इष्टि - जिसकी हवि अग्नि के लिए अष्ट कपाल पुरोडाश याग, तथा अग्निषोमीय उपांशु याग, अथवा विष्णु देवताक उपांशुयाग में घृत की आहुति के रूप में है, परन्तु इन्द्र के लिए दधि, पय, द्रव्यक,सान्नाय्य आहुति दी जाती है।

असान्नाय्य इष्टि-

असान्नाय इष्टि के अन्तर्गत-

(१) अग्नि के लिए अष्ट कपाल पुरोडाश याग,

(२) अग्निषोमीय उपांशु याग अथवा विष्णुदेवताक उपांशुयाग

(३) इन्द्राग्नि के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश की हवि दी जाती है।

दर्श याग में दो प्रकार की हवियाँ होती हैं। एक सान्नाय दूसरा असान्नाय्य। सान्नाय्य उसको कहाजाता है जिस याग में दूध और दही के सम्मिश्रण की आहुति दी जाती है। असान्नाय्य उसे कहा जाता है जिस याग में दूध तथा दही की आहुति नहीं दी जाती है।

सान्नाय्य शब्द की व्युत्पत्ति-

दर्श याग में दूध तथा दधि की जो हवियाँ इन्द्र को दी जाती हैं, उसका सम्मिलित नाम सान्नाय्य है। इस कृत्य में सायं दोह तथा प्रातः दोह होता है। सान्नाय्य हवि का सम्पादन (चन्द्र दर्शन रहित) अमावस्या तिथि को पिण्ड पितृयज्ञ कर लेने के पश्चात् किया जाता है। सान्नाय्य आहुति से सम्बद्ध एक आख्यान शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है। इन्द्र ने देवताओं से कहा - जब मैंने वृत्रासुर को वज्र से मारा तो मैं डर गया और दुबला हो गया, इसलिए द्वादश कपाल वाली पुरोडाश की हवि अच्छी नहीं लगती है। अतः ऐसी हवि तैयार करें, जिससे मेरा पेट भर जाय। देवताओं ने सोचा कि इन्हें सोम के अलावा कुछ अच्छा नहीं लगेगा। तब देवताओं ने सोम तैयार करने के लिए गौओं को इकट्ठा किया और उन

गौओं ने सोम को खाया और जल को पिया और इससे दुहे दूध को उन्होंने इन्द्र को दिया। तब पुनः इन्द्र ने कहा -मेरा पेट तो भर जाता है, परन्तु रुचिकर नहीं लगता। तुम सब ऐसा उपाय करो कि जिससे मुझे अच्छा लगे, तब देवताओं ने उस दूध को पकाकर अधिक रुचिकर बना दिया और जिससे इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। यद्यपि दूध या दधि एक ही चीज है, चूंकि इन्द्र ने कहा "धिनोति मे" मेरा पेट भर जाता है, इसलिए दूध का नाम दधि हुआ। इस दधि में पका हुआ दूध मिलाया जाता है, इसलिए इसे **श्रुत** कहते हैं। इस महत्त्व को समझकर दर्श याग में जो सान्नाय्य आहुति देता है, वह प्रजा और पशु से पूर्ण होकर सारे दोष से छुटकारा पा जाता है। अतः दर्श याग में दूध और दही की सान्नाय्य आहुति देनी चाहिए।

दर्शेष्टि के प्रधान यागों की विधि-

१. **दर्शयाग में आग्नेय अष्टकपाल पुरोडाश याग**- पौर्णमास इष्टि तथा दर्श इष्टि में अग्नि देवता को अष्ट कपाल पुरोडाश की हवि दी जाती है। इसकी विधि तथा नियम के विषय में पौर्णमास याग के अग्नि देवता क अष्टाकपाल पुरोडाश याग में देखेंगे।

२. **अग्निषोमीय उपांशु याग अथवा विष्णुदेवताक उपांशु याग** :- इसमें अग्नि और सोम देवता को उपांशु हवि दी जाती है, परन्तु विकल्प से दर्श इष्टि में विष्णु देवता को उपांशु याग दिया जाता है। आचार्य विद्याधर गौड़ के अनुसार दर्श इष्टि में यदि सान्नाय्य आहुति दी जाती है तो वहाँ पर अग्निषोमीय देवता को उपांशु आहुति दी जाती है, परन्तु असान्नाय्यायियों के लिए वहाँ पर विष्णु देवता को उपांशु रूप में आहुति दी जाती है। शांखायन भी इस मत को मानते हैं। बौधायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि यह आहुति विष्णु देवता को दी जाती है। ध्यातव्य है कि पौर्णमास इष्टि की भाँति दर्श याग में भी आहुति देने की विधि वही हैं, परन्तु विष्णु देवताक पक्ष में मन्त्रों में भिन्नता पाई जाती है।

३. **विष्णु देवताक उपांशुयाग** -- इस विधि में सर्वप्रथम अध्वर्यु से होता आदिष्ट होकर "**इदं विष्णुर्विचक्रमे**" पुरोनुवाक्या का पाठ करता है। तदनन्तर पहले की भाँति अध्वर्यु जुहू में आज्य लेकर, अध्वर्यु और आग्नीध्र आश्रवण-प्रत्याश्रवण कर्म को करते हैं। उसके बाद अध्वर्यु होता को आदेश देता है कि "विष्णु के लिए याज्या पढ़ो"। होता आदिष्ट होकर "**ये यजामहे विष्णु.....**

वौषट्" इस याज्या का पाठ करता है। वौषट् उच्चारण के सद्यः अनन्तर यथा स्थान जुहू स्थित आज्य को डाल देता है। इधर यजमान – **विष्णवे न मम** कहता है।

४. **इन्द्रदेवताक सान्नाय्य अथवा महेन्द्र देवताक याग विधि** : --इस विधि में भी अध्वर्यु पूर्ववत् होता को, इन्द्र के लिए पुरोनुवाक्या मन्त्रपाठ करने हेतु होता को प्रैष देता है। होता आदिष्ट होकर "**ओम् एन्द्रसानसिं रयिं.....भरो३म्**" इस पुरोनुवाक्या का पाठ करता है।" तदनन्तर अध्वर्यु दो बार दधि, जुहू में लेता है, परन्तु पञ्चावत्तियों के पक्ष में दही का तीन अवदान लिया जाता है, परन्तु उपस्तरण तथा अभिधारण एक ही बार होता है। तदनन्तर पूर्ववत् अध्वर्यु तथा आग्नीध् आश्रवण-प्रत्याश्रवण कृत्य को करता है। तत्पश्चात् होता को अध्वर्यु आदेश देता है कि इन्द्र के लिए याज्या का पाठ करो। होता आदेशित होकर "**ये यजामहे.....इन्द्र प्रसेसाहिषे देवतानां वौषट्**" इस याज्या का पाठ करता है। याज्या पाठ के सद्यः अनन्तर वौषट् उच्चारण के साथ ही साथ जुहू में स्थित दधि तथा पय का अग्नि में आहुति देता है। तदनन्तर यजमान **इन्द्राय न मम** इस वाक्य का उच्चारण करता है।

इस प्रकार दर्शेष्टि के प्रधान यागों का सामान्य परिचय प्रस्तुत है, इसका विशिष्ट परिचय अगली कक्षाओं में विधान के साथ पढने को प्राप्त होगा।

इकाईः 3 पौर्णमास के प्रधान याग (परिचय)

दर्शपौर्णमास याग से सम्बद्ध प्रधान अनुष्ठान

प्रधान याग - फल के उद्देश्य से विहित जब देवता को आहुति दी जाती है, तो उसे **प्रधान याग** कहा जाता है। पौर्णमास इष्टि में मुख्यतया दो देवता होते हैं, **अग्नि** तथा **सोम,** और इसके तीन प्रधान याग होते हैं जो इस प्रकार हैं -

१. अग्नि देवता के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश याग - **आग्नेय पुरोडाश याग**

२. अग्नि तथा सोम के लिए एकादश कपाल पुरोडाश याग - **अग्निषोमीय पुरोडाश याग**

३. अग्नि तथा सोम के लिए आज्य का उपांशु याग - **उपांशु याज (आजद्रव्येन)** इस याग को आग्नेय अष्टाकपाल के बाद तथा अग्निषोमीय एकादश कपाल पुरोडाश याग के पूर्व किया जाता है।

पौर्णमास इष्टि में प्रधान याग की विधि

यह पहले बताया जा चुका है कि पौर्णमास इष्टि में सर्वप्रथम अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश याग

दिया जाता है। अतः उसकी विधि के बारे में सर्वप्रथम जानते हैं-

१. **आग्नेय पुरोडाश याग** - इस विधि में अध्वर्यु सर्वप्रथम अपने दक्षिण पैर को आगे बढ़ाते हुए पुरोडाश रख गये स्थान पर आता है। तदनन्तर अध्वर्यु होता को अग्नि के लिए पुनरोवाक्या पाठ करने के लिए प्रैष देता है।' होता आदिष्ट होकर "**अग्निमूर्द्धाः दिवः**" इस मन्त्र का पाठ करता है ध्यातव्य है कि अनुवाक्य लडखडाती वाणी में बोला जाता है। प्रैष के उच्चारण के अनन्तर अध्वर्यु आज्य स्थाली से स्रुव के द्वारा एक बार घृत जुहू में डालता है।तदनन्तर श्रृतावदान के द्वारा पुरोडाश को पूर्वार्ध से अंगुष्ठ के पर्वमात्र लम्बे दो टुकडे को निकालकर जुहू के ऊपर रखकर, उसके ऊपर घी को गिराता है। कामनापूर्ण के लिए पुरोहित पुरोडाश के पूर्वार्ध भाग से प्रथम अवदान लेकर स्रुव् के पूर्वार्ध भाग में रखें। इसी तरह विधि पूर्वक पुरोडाश के अवदान को लेकर जुहू के ऊपर रखकर उसके ऊपर आज्य को गिराता है तथा पुरोडाश के कटे स्थल पर भी आज्य को गिराता है। इस क्रिया में किसी मन्त्र की विनियोग विधान नहीं है। तदनन्तर अध्वर्यु उस

स्थान से आहवनीय अग्नि के पास आहुति डालने के लिए जाता है। ध्यातव्य है कि पुरोडाश हवि को लेकर चलते समय सबसे पहले अपना बायाँ पैर आगे बढ़ा कर जाना चाहिए। तदनन्तर अध्वर्यु और आग्नीध्र प्रत्याश्रवण करते हैं। इसके बाद अध्वर्यु होता को आग्नेय अष्टकपाल पुरोडाश याग हेतु याज्या पढ़ने का आदेश देता है -"**अग्निं यज**" । होता आदेशित होकर "**ये यजामहे.....अग्नि भुवो यज्ञस्य.....हव्यवाहाँ वौषट्**" इस याज्या का पाठ करता है। ध्यातव्य है कि याज्या को शीघ्रता से पढ़ना चाहिये। अध्वर्यु वौषट् उच्चारण के सद्यः अनन्तर जुहू में स्थित पुरोडाश को आहवनीय अग्नि में डाल देता है। अनन्तर यजमान **अग्नये न मम** उच्चारण करता करता है।

२. **अग्निषोमीय उपांशुयाग** - दर्श पौर्णमास इष्टि में समान रूप से उपांशु याग किया जाता है। इस उपांशु याग के देवता क्रमशः अग्नि तथा सोम हैं तथा इसकी हवि आज्य है। आहुति देते समय मन्त्रों का विनियोग उपांशु रूप में किया जाता है, इसलिए इसका नाम उपांशु याग है। इसे उपांशुयाग कहना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि पौर्णमास इष्टि में अग्नि तथा सोम देवता के लिए भी पुरोडाश का निर्माण किया जाता है। वह पौर्णमास याग की प्रधान हवि है। इस अग्निषोमीय पुरोडाश याग से वैलक्षण्य दिखाने के लिए याज्ञिक परम्पराओं में इसे अग्निषोमीय उपांशुयाग का अभिधान मिला है। उपांशु याग का विधान आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश याग के अनन्तर किया जाता है।

इस विधि में अध्वर्यु दक्षिण पाद को आगे बढ़ाकर हवि के समीप आकर "**अग्नीषोमाभ्यां**" इस वाक्य का उपांशु रूप में उच्चारण करके अनुवाक्या पढ़ने हेतु होता को आदेश देता है। होता आदेशित होकर **अग्नीषोमा**० इत्यादि मन्त्र का उपांशु उच्चारण करके "ओम्" शब्द का उच्च स्वर से पाठ करता है। तदनन्तर अध्वर्यु आज्य भाग आहुति की भांति **आप्यतायताम्** मन्त्र से स्रुव के द्वारा चार बार घृत लेकर यजति स्थान को आता है, इसके बाद अध्वर्यु आग्नीध्र आश्रवण-प्रत्याश्रवण कृत्य को करके अध्वर्यु होता को अग्नोषोमीय उपांशु याग हेतु याज्या पढ़ने हेतु आदेश देता है - **अग्नीषोमीयं यज** अर्थात् हे होता अग्नि तथा सोम के लिए याज्या पढ़ो, होता आदेशित

होकर - **अग्नीषोमाज्यस्य वीताम्** इस मन्त्रांश का उपांशु उच्चारण करके **वौषट्** का उच्चारण उच्च स्वर से करता है। वह पूर्ववत् वौषट् कार के उच्चारण के सद्यः अनन्तर जुहू में स्थित आज्य को अग्नि में डाल देता है। आहुति के अनन्तर यजमान **अग्नीषोमाभ्यां न मम** कहता है।

३. **अग्निषोमीय एकादश कपाल पुरोडाश याग** :- इस याग की विधि में भी अध्वर्यु पहले के समान होता को अग्निसोम के लिए पुरोनुवाक्या मन्त्र बोलने हेतु आदेश देता है। होता आदिष्ट होकर "**अग्निषोमो मे वेदसा**" इस पुरोनुवाक्या मन्त्र का पाठ करता है। प्रैष के अनन्तर अध्वर्यु पूर्ववत् आज्यस्थाली से स्रुव के द्वारा एक बार आज्य लेकर जुहू में डालता है। तदनन्तर वह पहले की भाँति पुरोडाश का अवदान दो टुकड़ों में लेकर जुहू के ऊपर रखता है। उसके ऊपर पुनः वह एक बार आज्य डालकर पुरोडाश के अवदान के स्थल में भी आज्य को डालता है। तदनन्तर - अध्वर्यु पूर्ववत् आग्नीध्र आश्रवण-प्रत्याश्रवण करके अध्वर्यु होता को "**अग्निषोमीय**" देवता के लिए याज्या पढ़ने हेतु आदेश देता है। होता आदिष्ट होकर **"ये यजामहे अग्निषोमो.....गृभीतान् .....वौषट्"** मन्त्र का पाठ करता है। पूर्व कथित वौषट् उच्चारण के सद्यः अनन्तर अथवा साथ ही वह जुहू में स्थित पुरोडाश के अग्नि में आहुति देता है।

यह पौर्णमासेष्टि के प्रधान यागों का संक्षिप्त वर्णन है।

इकाईः 4 पञ्चभूसंस्कार

पञ्चभूसंस्कार दर्शपूर्णमास प्रयोग का प्रारम्भिक विषय है। भूसंस्कार करके ही अग्नि का स्थापन करना चाहिये।

इन भूसंस्कारों का परिचय इस प्रकार है-

१. कुण्ड का परिसमूहन-तीन दर्भों से अग्निकुण्डस्थ पांसु धूलि को दूर करना - **दर्भैः परिसमुह्य।**

२. कुण्ड का उपलेपन-गोमय गोबर और जल से कुण्ड को लीपना – **गोमयोदकेनोपलिप्य।**

३. तीन बार उल्लेखन-हस्तप्रमाण खादिर खड्गाकृति स्फ्य से पूर्व से उत्तर तक अग्निकुण्ड के बराबर तीन रेखाओं का करना – **तिस्रो रेखा उल्लिख्य।**

४. पांसु का उद्धरण - स्फ्य से पूर्व खींची गई रेखाओं की मिट्टी को अनामिका और अङ्गुष्ठ से उठाकर पृथक् करना – **पांसून् उद्धृत्य।**

५. जल से अभ्युक्षण-जल से अग्निकुण्डों का प्रोक्षण करना अर्थात् जल छिड़कना – **जलेनाभ्युक्ष्य।**

प्रत्येक कर्म की तीन आवृत्ति करनी होती है। इन पांच कर्मों का पारस्कर गृह्यसूत्र में निर्देश किया है। व्याख्याकारों के मतानुसार ये पांच भूसंस्कार अग्निकुण्डों में अग्निस्थापनार्थ हैं।

पञ्चभूसंस्कारविधिः

पञ्चभूसंस्काराः –

- **कुशैः त्रिप्रदक्षिणं परिसमुह्य। परिसमुह्य। परिसमुह्य। तान् कुशान् ईशान्यां परित्यज्य।**
- **गोमयोदकेन त्रिः उपलिप्य। उपलिप्य। उपलिप्य।**
- **स्फ्येन स्रुवमूलेन वा प्रागग्राः तिस्रो रेखा उल्लिख्य। उल्लिख्य। उल्लिख्य।**
- **अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखाभ्यः पांसून् उद्धृत्य। उद्धृत्य। उद्धृत्य।**
- **पुनः शुद्धजलेन अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य।**

आनीतमग्निं कुण्डस्य आग्नेय्यां दिशि निधाय। हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादाँशं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्। उदकोपस्पर्शः। अग्निं त्रिर्भ्रामयित्वा। योनिमार्गेण नीत्वा। आत्माभिमुखमग्निं प्रतिष्ठाप्य॥

अग्नि का अन्वाधान

पूर्व में आवाहित अग्नि में समिधाओं को पुनः डालकर उसे प्रज्वलित करना अग्नि का अन्वाधान है। आप. श्रौतसूत्र के अनुसार पहले से ही अग्निहोत्र करने वाले यजमान के लिए अग्नि का आधान अर्थात् प्रज्वलन वर्जित है । क्योंकि उसकी आहवनीय अग्नि नित्य होती है, अतः उसको "**देवागातुं०**" मन्त्र का जप करना चाहिये। इस कर्म को अध्वर्यु अथवा यजमान करता है। अध्वर्यु स्फ्य को बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ में एक समिधा को लेकर "ममाग्नेवर्च्चः" इत्यादि विहव्या ऋचा से आहवनीय अग्नि में डालता है। उसके बाद मौन रहकर दूसरी समिधा आहवनीय अग्नि में डाली जाती है।

इस तरह से गार्हपत्य तथा दक्षिण अग्नि में भी दो समिधायें डाली जाती है, अथवा "भू" महाव्याहृति से पहले समिधा गार्हपत्य अग्नि में डाली जाती है। तथा दूसरी समिधा मौनभाव से प्रक्षिप्त करने का विधान है। इसी प्रकार क्रमशः "भुवः""स्वः",महाव्याहृतियों से दक्षिण अग्नि तथा आहवनीय अग्नि में दो समिधा डाली जाती है। इस कर्म के दो पक्ष हैं, पहले पक्ष में प्रथम समिधा आहवनीय डाली जाती थी, दूसरे पक्ष में उसके विपरीत गार्हपत्य अग्नि में प्रथम समिधा डाली जाती है। कुछ लोग मौन रहकर दोनों समिधाओं को पहले गार्हपत्य में तदनन्तर आहवनीयाग्नि में तथा तदनन्तर दक्षिणाग्नि में दो-दो समिधाएँ मौन रहकर अग्नि में डालते हैं। अथवा समस्त समिधाओं को आहवनीय अग्नि पर डाला जा सकता है। अग्नि के अन्वाधान के विषय में उपरितन निर्दिष्ट समिधाओं के आधान के सम्बन्ध में विविध मतवाद हैं।

अन्वाधानप्रयोगः

॥द्रव्यदेवताभिधानम, अग्न्यन्वाधानञ्च॥

अध्वर्युः यजमानो वा स्फ्यं सव्यहस्ते धृत्वा षड्समिधो हस्ते गृहीत्वा अग्न्यन्वाधानं कुर्यात्।

तत्रादौ द्रव्यदेवताभिधानम्।

ॐ विहितं त्रितं द्वितम् एकतं पात्र्यङ्गुलिप्रक्षालनेन।

आघारदेवते- प्रजापतिम, इन्द्रम् आज्येन।

प्रयाजदेवताः- समिधः, तनूनपात्, इडा, बर्हिषदम, स्वाहेति आज्येन।

आज्यभागदेवते- अग्निं सोमं ध्रौवतः पञ्चगृहीतेनाज्येन।

प्रधानदेवताः- अग्निमष्टाकपालेन पुरोडाशेन। अग्नीषोमावन्तराज्येनोपांशु। अग्नीषोमावेकादशकपालेन पुरोडाशेन।

स्विष्टकृतम्- शेषेणाग्निं स्विष्टकृतम्।

अनुयाजदेवताः- देवं बर्हिषदम, देवं नराशंसम, देवमग्निं स्विष्टकृतम् च देवान् औपभृतेनाज्येन।

संस्रवः- विश्वान् देवान् संस्रवैः।

पत्नीसंयाजदेवताः - सोमं, त्वष्टारं, देवानां पत्नीः, अग्निं गृहपति च पञ्चगृहीतेनाज्येनोपांशु गार्हपत्ये। अग्निमदब्धायुवसीतमं संस्रवैः।

अथ दक्षिणाग्नौ होमाः- अग्निं संवेशपतिं, सरस्वतीं यशोभगिन्यं च सकृद्गृहीतेनाज्येन। अग्निं पिष्टलेपैः।

वातं ध्रौवाज्येन आहवनीये। दिव्यं नभसं बर्हिषा। रक्षांसि कणैः उत्करे। एताः देवताः सद्योऽहं यक्ष्ये। अन्वाहार्यो दक्षिणा।

अथ वैकल्पिकस्मरणम्- सद्यः पक्षः। ममाग्ने पक्षः। पञ्चदशो वज्रः। यवैर्यागः व्रीहिभिर्वा। उत्तमे काले व्रतोपायनम्। ये केचन वैकल्पिकपदार्थास्ते ऋत्विक् प्रत्ययेन मया अवधारिताः इत्यवधार्य।

अग्न्यन्वाधानम्- अग्न्यन्वाधानमध्वर्युर्यजमानो वा। ममाग्नेत्याहवनीये समिधमादधाति। तूष्णीं द्वितीयाम्।

ॐ ममाग्ने वर्चचो विहवेष्वस्तु व्वयं त्वेन्धानास्तन्वंपुषेम।
मह्यन्नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाऽऽध्यक्षेण पृतनाजयेम॥

एवमेव गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ च।

ॐ ममाग्ने वर्चो..... पृतनाजयेम॥ गार्हपत्ये समिधमादधाति तूष्णीं द्वितीयाम्।

ॐ ममाग्ने वर्चो..... पृतनाजयेम॥ दक्षिणाग्नौ समिधमादधाति तूष्णीं द्वितीयाम्।

इकाईः 5 दर्भ इध्माहरण

बर्हि (कुश) का आहरण –

यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले इध्म तथा कुशों को यज्ञ भूमि में ले आना "इध्मवर्हिराहण" है। शुक्ल यजुर्वेदीयब्राह्मणों में तथा श्रौत सूत्र में इस विधि का अनुल्लेख हैं। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले इध्म तथा कुशों का प्रयोग अवश्य किया जाता होगा, परन्तु यह एक सामान्य बात थी इसलिए शुक्ल यजुर्वेद प्रस्थान में सम्भवतः इसका उल्लेख नहीं किया गया। कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मणों में तथा श्रौतसूत्रों में इध्म वर्हि के आरहण की विधि का पूर्णतया वर्णन मिलता है। गार्हपत्य के सामने अध्वर्यु तथा यजमान खड़े होकर (**देवस्यत्वा**) मन्त्र के द्वारा छेदक अस्त्र को हाथ में ले लेते हैं और उसे आग में तपाते हैं। छेदक अस्त्र को तपाने के लिए **प्रत्युष्टं रक्षः** मन्त्र का विधान बताया गया है। इसके बाद आहवनीय की ओर जाता है। आहवनीय की और जाने में "**प्रेयमगादधृष्ण**" मन्त्र का प्रयोग होता है। पुनः वेदि का प्रत्यवेक्षण **इध्मवर्हिरासदे** मन्त्र से होता है।

प्रस्तर (कुशमुष्टि)

प्रयोग के अनुरूप कुशाओं का गठ्ठा या समूह बनाया जाता है। जिसको प्रस्तर कहा जाता है। ये दो प्रकार के हैं – १. सामान्य प्रस्तर तथा २. उद्गातृप्रस्तर।

सामान्य प्रस्तर का प्रयोग अध्वर्यु तथा अन्य ऋत्विज् कर्मानुसार करते हैं, तथा उद्गातृप्रस्तर उद्गाता सामगान करते हुए अपने हाथ में रखते हैं। नीचे दोनों प्रस्तरों को सचित्र दर्शाया है।

प्रस्तर - इहाथ में जो कुश है

उद्गातृप्रस्तर

इध्म तथा सामिधेनी निर्माण

इध्म अर्थात् याग के लिए उपयुक्त ईंधन। इध्म में अनेकों यज्ञीय वृक्षों की लकड़ियाँ सम्मिलित हैं।

कुशप्रस्तर के जैसे तिहरी रस्सी को बनाकर इक्कीस लकड़ियों के इन्धन को **यं कृष्णरूपं कृत्वा** मन्त्र से बाँध लेना चाहिये। पहले सामिधेनी के लिए लकड़ियों को लेकर तब इध्म की लकड़ी लेनी चाहिये। लकड़ियों की संख्या सीमित होती है। समिधाएँ एक-एक प्रदेश की होती हैं, ईन्धन पलाश अथवा खदिर की लकड़ी की होता है। यदि उनकी उपलब्धि न हो तो याज्ञिक को वृक्षों की लकड़ियाँ लेनी चाहिये।

इध्म और बर्हि

इकाईः 6 अध्वर्यु द्वारा पात्रासादन

पौर्णमासेष्टि में प्रयुक्त यज्ञपात्रों का परिचय-

1. **उत्तरारणि**- यह यज्ञपात्र शमीगर्भ अश्वत्थवृक्ष के काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करने के लिए निर्मित की जाती है और इसके काष्ठ द्वारा ही एक आठ अंगुल लम्बाई वाला टुकड़ा काटकर इसमें मन्थ लगाया जाता है।

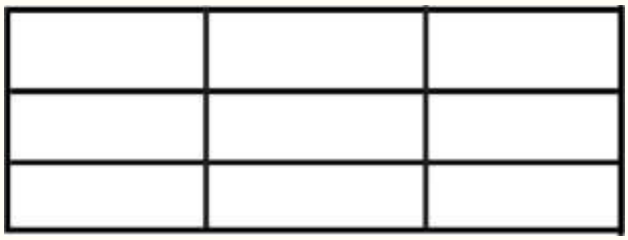

"**उत्तरारणेरीशानदिक्संस्थ- मष्टांगुलं प्रमन्थं छित्वा,** दे.या.प.-पृष्ठ 104

आश्वत्थीन्तु शमीगर्भीमरणीं कुर्वीत सोत्तराम्।

उरोदीर्घारत्निदीर्घा चतुर्विंशाङ्गुलां तथा॥

चतुरङ्गुलोच्छ्रितां कुर्यात् पृथुत्वेन षडङ्गुलाम्।

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्वादशाङ्गुलम्॥

ओबिली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्।

मूलादष्टाङ्गुलमुत्सृज्य त्रीणि त्रीणि च पार्श्वयोः॥

मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्रात्तु द्वादशाङ्गुलम्।

देवयोनिः स विज्ञेयस्तत्र मध्यो हुताशनः॥ इति गृह्यसंग्रह- १/७८-८१

2. **अधरारणि**- अधरारणि पर मन्थ रखकर अग्नि मन्थन किया जाता है। चौबीस अंगुल लम्बी, छः अंगुल चौड़ाई वाली एवं चार अंगुल ऊँची निर्मित करते हैं। "**अधरारणिमुत्तराग्रां निधाय।** दे.या.प. पृष्ठ 104

3. **मन्थ-** यह कील जैसा आठ अङ्गुल लम्बाई का उत्तरारणि में से टुकड़ा निकालकर बनाया जाता है।

इसके नुकीले भाग को अधरारणि पर रखकर ऊपर से उसको ओबिली से दबाकर मध्य में पहले से लगाई हुई रज्जु को दोनों हाथों से खींचकर अग्निमन्थन करते हैं। **"एकशलाकया मन्थः**। का.श्रौ.सू.- 5/8/18

4. **नेत्र-** मन्थ में लपेटकर जिस रज्जु से अग्निमन्थन किया जाता है, उसे नेत्र कहते हैं। इसकी लम्बाई चार हस्त होती है। **"नेत्रं स्याद् व्याममात्रकम्। यज्ञपार्श्व परि.** श्लोक 4.1

5. **ओबिली-** अग्निमन्थन करते समय मन्थ को जिस काष्ठ से दबाते हैं, उसे ओविली कहते हैं। यह बारह अङ्गुल लम्बी होती है। "ओविली द्वादशाङ्गुल्या। यज्ञपार्श्व श्लोक 41

6. **अग्निहोत्रहवणी-** जिसके द्वारा अग्निहोत्र किया जाता है, उसे अग्निहोत्रहवणी कहते हैं।**"अग्नौ हूयते यया साऽग्निहोत्रहवणी"** विकङ्कत काष्ठ की बाहु के समान लम्बी, आगे की ओर चार अंगुल गर्तवाली, हंसमुखी होती है। **"अग्निहोत्रहवणी हंसमुखी। दे.या.प.-पृष्ठ 6**

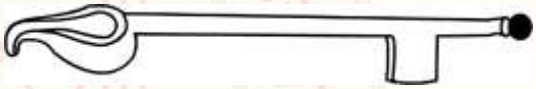

7. **स्फ्य-** यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ से निर्मित किया जाता है। यह एक हस्त लम्बा और दोनों ओर नुकीला होता है। यज्ञ करने के समय आग्नीध्र नामक ऋत्विज् इसे अपने हाथ में पकड़े रहता है। यथा- **"स्फ्यश्च। का.श्रौ.सू.-1/3/33**

8. **धृष्टि(उपवेष)**- यह कपालोपधान से पूर्व अग्नि को हटाने के लिए प्रयुक्त होता है। यह हस्त के पंजे के आकार का, एक हाथ लम्बाई का होता है। **"धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय। का.श्रौ.सू.-2/4/25**

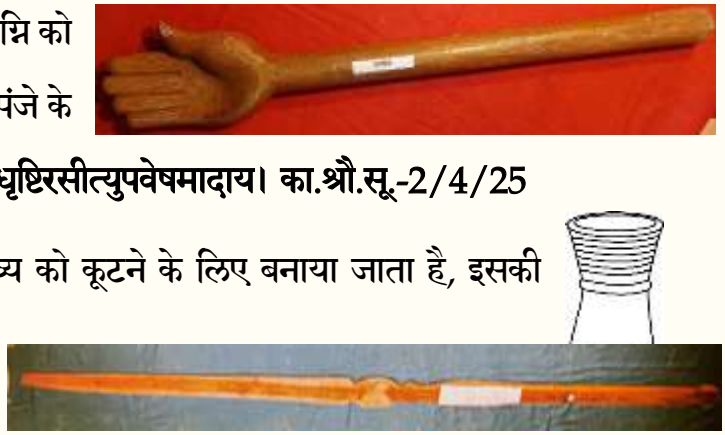

9. **उलूखल-** पलाश काष्ठ से निर्मित हविर्द्रव्य को कूटने के लिए बनाया जाता है, इसकी ऊँचाई बारह अङ्गुल और मध्य में पतला

होता है। **"पालाशः स्यादुलूखलः। दे.या.प. पृष्ठ 6**

10. **मुसल**- यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ से निर्मित किया जाता है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है, इसका

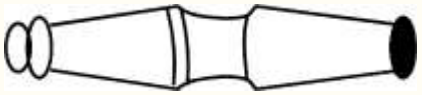

उपयोग यव, व्रीहि आदि हविर्द्रव्य का खण्डन हेतु करते हैं। **"खादिरं मुसलं कार्यम्।, मुसलोलूखलेवार्थौ स्वायते सुदृढे तथा।" दे.या.प. पृष्ठ सं.6**

11. **उपयमनी**- जुहू के आकार की और जुहू से बड़ी एक स्रुची को उपयमनी कहते हैं। **"उपयमनीं महावीरम्" दे.या.प. –पृष्ठ.सं. 265**

12. **जुहू- हूयतेऽनयेति जुहूः** अर्थात् पलाश काष्ठ से निर्मित होम करने की स्रुची को जुहू कहते हैं।

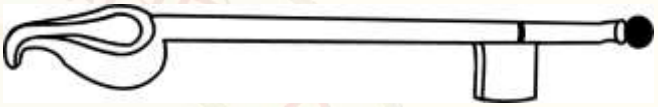

यह भुजा के बराबर लम्बी और आगे की ओर चार अंगुल गड्ढेवाली, हंसमुखी होती है। इसी से देवता को हविर्द्रव्य अर्पित किया जाता है। जुहू के विषय में **"पालाशी जुहूः। का.श्रौ.सू.-1/3/35, पर्णमयी जुहूर्भवति।** तै.सं.-3/7/5

13. **उपभृत्**- उप समीपे नीयत इति उपभृत्। यह स्रुची अश्वत्थ काष्ठ की बनती है। इसका

आकार और माप जुहूवत् होता है। याग के समय अध्वर्यु इसे अपने साथ रखता है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर शेष आहुति के लिए इसमें से जुहू में आज्य लेकर आहुति दी जाती है। "आश्वत्थ्युपभृत्" का.श्रौ.सू. - 1/3/36

14. **ध्रुवा- वेद्यामप्रचलिता तिष्ठतीति ध्रुवा।** यह मान और आकार में जुहू सदृश स्रुची है। यह

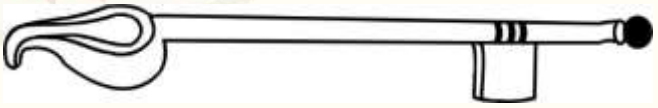

वेदि में रखी रहती है। याग के निमित्त इसमें से ही स्रुवा से आज्य लेकर जुहू में छोड़ते हैं और याग करते हैं। **अभिघारणं ध्रुवायाः।** का.श्रौ.सू.-3/3/9

15. **रौहिणहवणी**- रोहिण पुरोडाश का हवन जिस स्रुची से किया जाता है, उसे रौहिणहवणी कहते

हैं। यह गर्तरहित, बाहुमात्र लम्बी, जुहूवत् आकार की स्रुची होती है। **रौहिणहवन्यादाय** । दे.या.प. पृष्ठ 268

16. **मयूख**- अजा को बाँधने के लिए प्रयुक्त लकड़ी की

खूँटी को मयूख कहते हैं। **स्थूणा मयूखम्।** का. श्रौ.सू.- 26/2/15

18. **शम्या**- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, बारह

अंगुल लम्बी तथा आगे से नुकीली होती है। यव एवं व्रीहि को पीसने के समय इसे शिला के नीचे रखते हैं। दृषद् एवं उपल के ऊपर इसके समाहनन द्वारा कुक्कुटवाणी उत्पन्न की जाती है, जिससे असुर नष्ट होते हैं। **"शम्या प्रादेशमात्री।"** दे.या.प.-पृष्ठ 7

19. **इडापात्री**- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित,

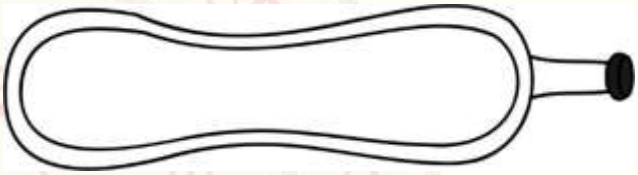

एक अरत्नि लम्बी, छः अंगुल चौड़ी, बीच में गहरी और कृशमध्या होती है। अध्वर्यु पुरोडाश और चरु प्रभृति की आहुति के अनन्तर शेष हविर्द्रव्य (पुरोडाश) को इसमें रखकर होता को देता है, जिसे इडोपह्वान के बाद ऋत्विज् सहित यजमान भक्षण करते हैं। **"इडापात्री० अरत्निमात्र्यौ मध्यसंगृहीते"**। दे.या.प. पृष्ठ 7

20. **स्रुव- स्रवति आज्यं यस्मात्।** जिस पात्र से

अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे स्रुव कहते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने के लिए आगे की ओर अंगुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है। **"खादिरः स्रुवः"** का.श्रौ.सू.-1/3/3/4

21. **इध्म**- पलाश की लकड़ी को काटकर

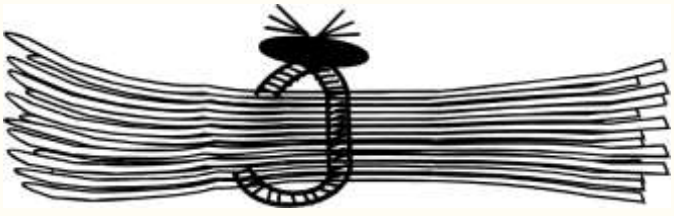

इध्म बनायी जाती है। ये एक हाथ लम्बी होती है। प्रकृतियाग में इनकी संख्या पन्द्रह एवं विकृतियाग में सत्रह या फिर इक्कीस होती है।

"पालाशोऽष्टादशसंख्यारत्निमात्रकाष्ठकः - दे.या.प. पृष्ठ 4

22. **बर्हि-** अग्निशाला की वेदि में बिछानेवाले दर्भसमूह को बर्हि कहते हैं।

तृणसंज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते।

ते बर्हिः संज्ञकादर्भारत्निमात्राधिकाश्च ये॥ यज्ञपार्श्व परिशिष्ट श्लोक 9

23. **पुरोडाशपात्री-** यह एक वारणकाष्ठ का प्रादेशमात्र चतुरस्र पात्र होता है। इन्हीं पर पुरोडाश रखे जाते हैं। एक कपाल पर श्रृत पुरोडाश को रखने के लिए यही पात्री सबिला होती है।

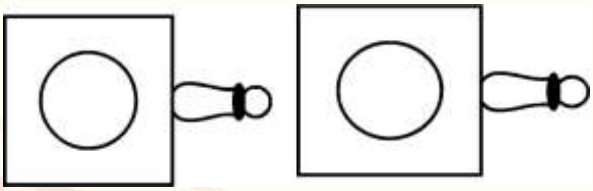

पुरोडाशाख्यपात्री च प्रादेशाश्चतुरस्रिकाः।

मध्ये तु दर्पणाकारा मूले दण्डसमन्विताः ।।

यज्ञपार्श्व परिशिष्ट- श्लोक 119-120

24. **प्राशित्रहरण-** यह यज्ञपात्र वारणकाष्ठ से बनता है। इस पर प्राशित्रसंज्ञक हवि को रखकर ब्रह्मा को दिया जाता है, इसकी लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई चार अंगुल की होती है। पीछे की ओर दो अंगुल का दण्डा होता है। ये दो होते हैं। एक पर पुरोडाश रखा जाता है और दूसरे को ऊपर से ढका जाता है।

प्राशित्रहरणं कुर्यात् पञ्चाङ्गुलप्रमाणकम्। आदर्शाकारवन्मध्ये..॥ यज्ञपार्श्व परि श्लोक 122

25. **षडवत्त-** इडोपह्वान हो चुकने पर अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्र को षडवत्त भाग दिया जाता है। वह भाग जिस पात्र पर रखा जाता है, उसे भी षडवत्त कहते हैं।

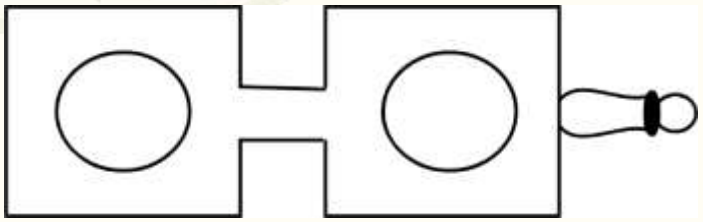

उपर्युक्त पात्र पर दो बार आज्य, दो बार पुरोडाश का भाग और पुनः दो बार आज्य रखने के कारण इस पात्र को षडवत्त कहते हैं।

"अग्नीधे षडवत्तम् ० । का.श्रौ.सू.- 3/4/16

26. **द्रोणकलश-** यह विकङ्कत काष्ठ का यज्ञपात्र है। इसकी लम्बाई अठारह अंगुल या एक हाथ की कही गई है और चौड़ाई

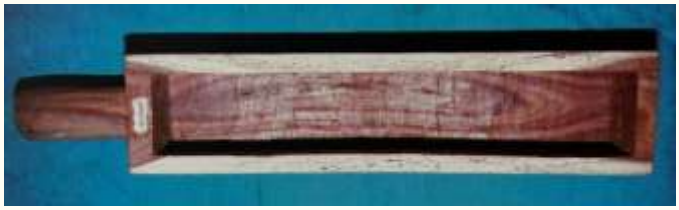

बारह अंगुल रहती है। मध्य में गर्तवाला तथा चारों ओर परिधियुक्त होता है, इसमें सोमरस छाना जाता है। **"द्रोणकलश० कुर्यादरत्निमात्राणि।"** यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 118

27. **होतृपीठ-** जिस यज्ञकाष्ठ निर्मित पीठ पर बैठकर होता सामिधेनी ऋचा पढता है, वह होतृपीठ होता है। यह एक अरत्नि लम्बा और प्रादेशमात्र चौड़ा होता है।

आसनानि चारत्निमात्रदीर्घाणि प्रादेशमात्रविपुलानि.। दे.या.प. पू. 7

28. **शूर्पम्-** यह पात्र बाँस से बना होता है। यज्ञ के लिए धान या यव को कूटकर इसी शूर्प से फटककर साफ किया जाता है। **शूर्प वैणवमेव च०** । दे.या.प. पृष्ठ 6

29. **कृष्णाजिन-** कृष्णमृग के चर्म को कृष्णाजिन कहते हैं। धान कूटने के समय उलूखल के नीचे और अग्निमन्थन के समय अरणी के नीचे इसको बिछाया जाता हैं। **"कृष्णाजिनमादत्ते।** श.प.ब्रा.- 1/1/1/4

30. **दृषत्- दीर्यते असौ दृषत्।** पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि का पेषण संस्कार इस पर होता है। यह एक शिला है। यह एक रत्नि लम्बी और चौड़ी चतुरस्र होती है। **दृषद्रत्निप्रमाणेन** । यज्ञपार्श्व परि.श्लोक 24

31. **उपला-** पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि को पीसने की लुढ़िया को उपल कहते हैं। **"तथोपला०।** यज्ञपार्श्व परि.श्लोक 124

32. **श्रुतावदान**- यह प्रादेशमात्र का एक यज्ञपात्र है। पुरोडाश में से अवदान लेने के के लिए इसका उपयोग होता है। इसका आकार खुरपी जैसा कहा है।

"प्रादेशमात्रं तीक्ष्णाङ्गुष्ठपर्वमात्रपृथुमुखम्" दे.या.प. पृष्ठ 7

33. **आज्यस्थाली**- देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं।

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।

माहेयी वापि कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च॥ कात्यायनस्मृति- 15/10

34.**अन्तर्धानकटः**- यह बारह अंगुल लम्बा, छः अंगुल चौड़ा और अर्धचन्द्राकार एक यज्ञपात्र है। जिस समय अध्वर्यु गार्हपत्य के अग्नि पर पत्नीसंयाज करता है, उस समय देवपत्नियों का आवाहन होता है।

अन्तर्धानकटस्त्वर्धचन्द्राकारो द्वादशांगुलः । दे.या.प. पृष्ठ सं 7

35. **शकट**- याग में प्रयुज्यमान यव, व्रीहि आदि हविपदार्थों को जंगल से काटकर जिस पर लादकरयज्ञभूमि तक लाया जाता है, वह शकट कहलाता है। इसका उपयोग इष्टि तथा सोमयाग में आवश्यक रूप से होता है।

"**श्रपणस्य पश्चादनस्तिष्ठत्समंगम्**" का.श्रौ.सू.- 2/3/12

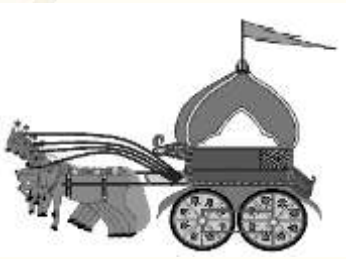

36. **रथ**- वाजपेयादि सोमयागों में रथारोहण का विधान है। एतदर्थ रथ की आवश्यकता होती है। "**रथावहरणम्**" का.श्रौ.सू.- 14/3/1, **अथ वाजपेये सप्तदशानां रथानां त्रयस्त्रयोऽश्वाः।**" बौ.श्रौ.सू.- 25/33

37. **वसतीवरी**- यज्ञ के कार्य के लिए उपयोग में आने वाले आवश्यक जल को वसतीवरी कहते हैं। यह जल विधिपूर्वक नदी से घड़ों में लाया जाता है। इसी जल से

सोमाभिषवादि कार्य होते हैं। "**वसतीवरीर्निनयन्ति** । दे.या.प. पृष्ठ 308

38. **धमनी-** वंश निर्मित जिस पात्र के द्वारा मुँह से हवा फेंकते हुए अग्नि प्रज्वलित करते हैं, उस पात्र विशेष को धमनी कहते हैं।

"**न पक्षपेनोपधमेत्। यज्ञपार्श्व श्लोक-66.67**

39.**महावीरपात्र-** अग्निष्टोम प्रभृति यागों में प्रवर्ग्य को यज्ञ का शिरस्थानीय कहा गया है। प्रवर्ग्य और घर्म महावीर का पर्याय है। महावीरसंज्ञक एक मिट्टी का पात्र बनाया जाता है। यह कई प्रकार की मिट्टी, गवेधुका और दूध आदि से सविधि बनता है। यह पात्र प्रादेशमात्र ऊँचा, चौड़े पेंदेवाला, चौड़े मुँहवाला और मध्य में कुश होता है। इसमें घी भरकर खूब खौलाते हैं। अनन्तर उसे मैदान में ले जाकर, उसमें दूध छोड़ते हैं। दूध छोड़ते ही अत्यन्त भयंकर ज्वाला निकलती है। बाद में उसे यज्ञशाला में लाकर उससे हवन करते हैं।

"**महावीरं परिसिञ्चति-** का.श्रौ.सू. 26/4/6, **कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीराणि०** ।

यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 18

40. **चरुस्थाली-** याग के निमित्त गार्हपत्य पर पाचित ओदन चरु है। यहाँ विशेष देवता के लिए विशेष द्रव्य विहित है। इस प्रकार देवता विशेष हेतु चरु बनाकर जिस पात्र में रखा जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं।

41. **एकधन-** यज्ञोपयोगी पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा एकधन है।

"**प्रत्यगेकधनान्**" का.श्रौ.सू. 9/2/22

42. **परीशास-** महावीर पात्र को अग्नि पर से पकड़कर उठाने के लिए यह एक यज्ञकाष्ठ का सन्देश है।

"**परीशासावादत्ते**- का.श्रौ.सू.- 26/5/12

43. **घन**- यह काष्ठ के दण्ड वाला लोहे का बना होता है। भूमि में मयूख या स्थूणा गाड़ने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। "**स्थूणां गोबन्धनार्थं निखनति।**"

44. **परशु**- यज्ञकार्य के निमित्त दर्भ अथवा समित् को काटने का शस्त्र परशु है।

"**पलाशशाखां छिनत्ति**" दे.या.प.-पृष्ठ 76

45. **दर्वि- दृणाति विदारयति येन स दर्विः**। यह विकंकत काष्ठ की बनी कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हविर्द्रव्य की आहुति दी जाती है।

"**दर्य्यादत्ते**" का.श्रौ.सू.-5/6/30, का. स्मृति- 15/15

46.**चरुपात्र**- जिस पात्र में देवता विशेष हेतु निर्दिष्ट हविर्द्रव्य ओदनादि को गार्हपत्य पर रखकर पकाया जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं। इसका मुँह चौड़ा, पेंदी गोल एवं आकार पतीला जैसा होता है।

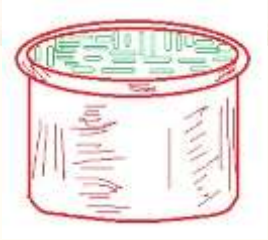

47. **चमसपात्र**- ये यज्ञपात्र विकङ्कत काष्ठ के बने होते हैं। इनका आकार और मान प्रणीता सदृश है। इनमें सोमरस रखकर आहुति दी जाती है। ये संख्या में दस होते हैं। प्रत्येक को एक दूसरे से अलग जानने के लिए इसके दण्ड में अलग-अलग चिह्न होते हैं।

विकंकतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्विलाश्चमसाः स्मृताः।

चतुरंगुलखाताश्च तेषां दण्डेषु लक्षणम्॥

होतुर्मण्डल एव स्याद्ब्रणश्चतुरस्रकः।

उद्गातृणां च त्र्यस्रिः स्याद्याजमानः पृथुः स्मृतः॥

प्रशास्तुरवतष्टः स्यादुत्तष्टो ब्रह्मशंसिनः।

पोतुरग्रे विशाखी स्यान्नेष्टुः स्याद्विगृहीतकः॥

आच्छावाकस्य राम्ना च आग्नीध्रस्य मयूषकः॥

48. **मण्डलहोतृचमस**- होता नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे होतृचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर मण्डलाकार चिह्न होता है।

"होतुर्मण्डल एव चमस स्यात्।"

49. **चतुरस्र-ब्रह्मचमस**- ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे ब्रह्मचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर चतुरस्र चिह्न होता है।

"ब्रह्मणश्चतुरस्रकः"

50. **त्र्यस्रि**-उद्गातृचमस- उद्गाता संज्ञक ऋत्विज् का सोमरस भरने के लिए जो चमस होता है, उसे उद्गातृ चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर त्र्यस्रि (त्रिकोण) चिह्न होता है।

"उद्गातृणां च त्र्यस्रिः स्यात्"

51. **पृथु**-यजमानचमस यजमान के लिए जो चमस होता है, उसे यजमान चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड पृथु (विस्तृत / चौड़ा) होता है।

"याजमानः पृथुः स्मृतः"

52. **अवतष्ट**-प्रशास्तृचमस प्रशास्ता नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे प्रशास्तृचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड नीचे की ओर झुका रहता है।

"प्रशास्तुरवतष्टः स्यात्"

53. **उत्तष्ट**-ब्राह्मणाच्छंसिचमस- यह ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विज् का चमस है। इसकी पहचान यह है कि इसका दण्ड ऊपर की ओर मुड़ा रहता है।

"उत्तष्टो ब्रह्मशसिनः"

54.**विशाखी**-पोतृचमस- यह पोता नामक ऋत्विज् का चमस है। इसका दण्ड द्विमुख जैसा होता है। इस द्विमुख की आकृति को विशाख कहा गया है। इसी विशाखी का रूपान्तर वैशाखी भी है, जिसका उपयोग एक पैरवाले लोग करते हैं।

"पोतुरग्रे विशाखी स्यात्"

55.**द्विगृहीतक**-नेष्टृचमस यह पात्र नेष्टा नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसके दण्ड में पकड़ने के लिए दो तरह की आकृति बनी होती है।

"नेष्टुः स्याद् द्विगृहीतकः"

56. **रास्नावान्**-अच्छावाक् चमस- यह पात्र अच्छावाक् नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसके दण्ड में रस्सी लिपटी हुई हो, ऐसा चिह्न बना रहता है।

"अच्छावाकस्य रास्ना च"

57. **मयूख-आग्नीध्रचमस**- यह पात्र आग्नीध्र नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसका दण्ड त्रिकोणाकृति का बना होता है।

"आग्नीध्रस्य मयूषकः"

58. **सप्तदशाररथचकम्** - रथ के चक्र में अक्ष से निचले हिस्से तक को जोड़ने वाला दण्डा अरा कहलाता है। ऐसे सत्रह अरों वाला रथ का चक्र सप्तदशाररथचक्र कहलाता है।

59. **राजासन्दी**- सोम को राजा कहा जाता है। "सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" (शु.य. सं.-9/40) पूजनीय होने से उसे देवयजन में आसन्दी पर स्थापित किया जाता है। यह चार पाये की मूंज से बीनी रहती है।

"औदुम्बरीमासन्दीम्"

60. **ग्रहपात्रम्**- ये पात्र दर्शपूर्णमास याग में प्रयुक्त उलूखल के आकार के होते हैं। अनेक होने के कारण इनमें अलग अलग चिह्न होते हैं। इनमें सोमरस लेकर आहुति दी जाती है, इनके निर्माण के लिए विकङ्कत काष्ठ को उपयुक्त माना गया है।

"ग्रहचमसद्रोणकलशादीनि"

॥ पात्रासादनम् ॥

(ततो गार्हपत्यस्योत्तरतः) द्विशः पात्राणि सादयति। यजमानो वा। उद्ग्राणि प्राक्संस्थानि पत्राणि सादयेत् ।

शूर्पमग्निहोत्रहवणी। स्प्यः, कपालानि (१९)। शम्या, कृष्णाजिनम्। उलूखलं, मुसलम् । दृषदुपला। पात्री, पवित्रछेदनानि त्रीणि कुशतरुणानि। द्वे पवित्रे, उपवेषः। आज्यस्थाली, सोदकमुपसर्जनीपात्रम्। कुशमुष्टी,

अन्वाहार्यपात्रम्। वेदितृणम्, अभ्रिः। योक्रम्, स्रुवः। जुहूः, उपभृत्। ध्रुवा, सन्नहनावच्छादनानि। परिधयः, विधृत्यौ। आज्यम्, पुरोडाशपात्र्यौ। होतृषदनम्, श्रृतावदानम्। औषधम्, प्राशित्रहरणे। अन्वाहार्यतण्डुलाः, अन्तर्धानकटः। पूर्णपात्रम्, कर्मापवर्गपक्षे समिद्वयम् । इध्मा, बर्हिः। उपकल्पनं, षडवत्तम् च ।

पुरोडाश कपाल की संख्या -

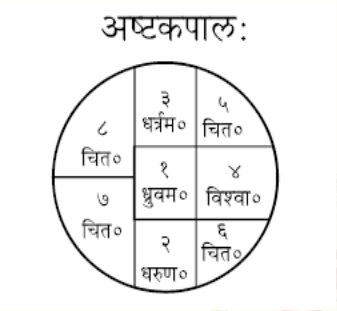

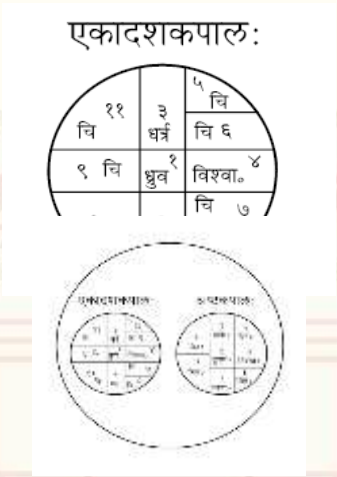

गार्हपत्य खरे कपालोपधाने क्रमः

इकाईः 7 अपःप्रणयन तथा हविर्निर्वाप (विधि)

॥ प्रणीताप्रणयनम् ।।

(ततो अध्वर्युः) गार्हपत्यमुत्तरेणोदकपात्रं (प्रणीतापात्रं) निधायाऽऽलभते भूतस्त्वेति ।

ॐ भूतस्त्वा भूत करिष्यामि।

ब्रह्मन्नप इति ब्रह्माणं पृच्छेत् । **ॐ ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि।**

ततो यजमानं प्रेषयेत् । **ॐ यजमान वाचं यच्छ।**

ब्रह्मा प्रणययज्ञमिति उपांशु पठित्वा प्रणयेत्युच्चैरध्वर्यु प्रणीताप्रणयनार्थमनुज्ञां दद्यात्। (उपांशु) ॐ प्रणय यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्तऽऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च धेहि ॥ (उच्चैः) ॐ प्रणय ॥ अनुज्ञात उत्तरेणाहवणीयः संप्रति (अनतिदूरे) निदधाति कस्त्वेति।

ॐ कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ॥ नान्तरेण गच्छेयुः ।

परिस्तरणम्- तृणैरग्नान्परिस्तीर्य पुरस्तात् प्रथमम्। पुरस्तात्, दक्षिणतः, पश्चात्, उत्तरतः इतरथावृत्तिः। एवं गार्हपत्याद्दक्षिणाग्नौ परिस्तीर्य।

॥ हविर्ग्रहणम् ॥

श्रपणस्य पश्चादुत्तरतो वा (औषधकरणम्)। पात्र्यां वा स्फ्योपहितायाम् । कर्मणे वामिति शूर्पाग्निहोत्रहवण्यादाय वाचं यच्छति। **ॐ कर्मणे वां व्वेषाय वाम् (आददे) ॥**

(तयोः) प्रतपनम् प्रत्युष्टं निष्टप्तमिति वा। **ॐ प्रत्त्युष्टरक्षः प्रत्त्युष्टाऽअरातयः ॥ धूरसीति धूरभिमर्शनम्।** धूरिषाऽऽरोहणानि पात्रीबिले (स्पर्शनं) जपति।

(उदकस्पर्शः) गच्छत्युर्वन्तरिक्षमिति । **ॐ उर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥**

ॐ धूरसिधूर्व्वधूर्व्वन्तन्धूर्व तं य्योऽस्मान्पूर्व्वति तन्पूर्व यं व्वयन्पूर्वामः ॥

देवानामसिव्वह्नितमःसस्न्नितमम्पप्रितमञ्जुष्टतमन्देवहूतमम् । अद्भुतमसि हविर्द्धानन्द हस्वमाहव्वार्मा ते यज्ञपतिहर्ध्वार्षीत् ॥

विष्णुस्त्वेत्यारोहणम्। धूरिषाऽऽरोहणानि पात्रीबिले (स्पर्शन) जपति।

ॐ व्विष्णुस्त्वा क्रमताम् ॥

प्रेक्षत उरुव्वातायेति हविष्यान् । ॐ उरु व्वाताय भव ॥

अपहतमिति निरस्यत्यन्यत्। अविद्यमानेऽभिमृशेत् । ॐ अपहतरक्षः ॥ (उदकोपस्पर्शः ।)

यच्छन्तामित्यालभते। **ॐ यच्छन्ताम् पञ्च ॥**

देवस्यत्वेति गृह्णाति मन्त्रेण त्रिवारं, तूष्णीं चतुर्थम् यथादेवतम्।

ॐ देवस्य त्त्वा सवितुःप्रसवेश्विनोर्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् ॥

अग्नये जुष्टं गृह्णामि ॥ प्र., द्वि., तृ., तूष्णीं च०।

ॐ देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेश्विनोर्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् ॥ अग्नीषोमाब्भ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ प्र., द्वि., तृ., तूष्णीं च०।

भूतायत्वेति शेषाभिमर्शनम् । **ॐ भूताय त्त्वा नारातये परिशेषयामि ॥**

स्वरिति प्राङ् ईक्षते। **ॐ स्वरभिविक्ख्येषम् ॥**

दृहन्तामित्युत्थानम् । **ॐ दृश्हन्तान्दुर्य्याः पृथिव्याम् ॥**

गच्छत्युर्वन्तरिक्षमिति । **ॐ उर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥**

श्रपणस्य पश्चात्सादयति पृथिव्यास्त्वेति । **ॐ पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्म्यदित्त्याऽउपस्त्थेग्ने हव्व्यरक्ष ॥**

॥ पवित्रकरणम् ॥

कुशौ समावप्रशीर्णाग्रावनन्तर्गर्भौ कुशैः छिनत्ति पवित्रेस्थ इति।

ॐ पवित्त्रे स्थो व्वैष्णव्यौ ॥

हविग्रहण्यामपः कृत्वा ताभ्यामुत्पुनाति सवितुर्व इति।

ॐ सवितुर्व्वः प्रसवऽ उत्त्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्त्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥

ता स्थानं तयोः। सव्ये कृत्वा दक्षिणेनोदिङ्गयति देवीराप इति।

ॐ देवीरापोऽ अग्रेगुवोऽ अग्रेपुवोग्रऽ इममद्य यज्ञन्नयताग्रे यज्ञपतिःसुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्। युष्म्माऽ इन्द्रो वृणीत व्वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीद्धं व्वृत्रतूर्य्ये ॥

प्रोक्षिता स्थेति तासां प्रोक्षणम् । **ॐ प्रोक्षिता स्त्थ ॥**

॥ हविः-पात्रप्रोक्षणम् ॥

ब्रह्मन् हविरिति ब्रह्माणं पृच्छेत् । **ॐ ब्रह्मन् हविः प्रोक्षिष्यामि ॥**

एवमामन्त्रितो ब्रह्मा प्रोक्षयज्ञमित्युपांशु पठित्वा प्रोक्षेत्युच्चैरध्वर्यु प्रोक्षणार्थमनुज्ञां दद्यात्

। (उपांशु) **ॐ प्रोक्ष यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्त ऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥** (उच्चैः) ॐ प्रोक्ष ॥

ततो अध्वर्युः सपवित्रं प्रोक्षण्युदकमादाय शूर्पस्थं हविः अग्नये त्वेत्यादि यथादेवतानामग्रहणेन प्रोक्षयेत्।

ॐ अग्नये त्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥

ॐ अग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥

पात्राणि दैव्यायेति । (प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्तिः)

ॐ दैव्यायकर्मणे शुन्धद्धं देवयज्यायै यद्वोशुद्धाः पराजग्मुरिदं व्वस्तच्छुन्धामि ॥ वज्र प्रोक्षामि ॥

एवमादौ वज्रं प्रोक्ष्य तमेव सव्ये कृत्वा इतराणि प्रोक्षयेत्। प्रोक्षामीति सर्वत्र। तद्यथा-

ॐ दैव्यायकर्मणे०... व्वस्तच्छुन्धामि। कृष्णाजिनम्प्रोक्षामि ।। उलूखलं प्रो०। मुसलं प्रो०। शम्यां प्रो०। दृषदं प्रो०। उपलां प्रो०। शूर्प प्रो०। पात्री प्रो०। उपवेषं प्रो०। कपालानि प्रो०। आज्यस्थालीं प्रो०। उपसर्जनीपात्रं प्रो०। कुशमुष्टीं प्रो०। अन्वाहार्यपात्रं प्रो०। वेदितृणं प्रो०। अभ्रिं प्रो०। यो प्रो०। स्रुवं प्रो०। जुहू प्रो०। उपभृतं प्रो०। ध्रुवां प्रो०। सन्नहनावच्छादनानि प्रो०। परिधीन् प्रो०। विद्युत्यौ प्रो०। वज्रवर्ज्यम् आज्यं प्रो०। पुरोडाशपात्रीं प्रो०। होतृषदनं प्रो०। श्रृतावदानं प्रो० । औषधं प्रो०। प्राशित्रहरणे प्रो०। अन्वाहार्यतण्डुलान् प्रो० । अंतर्धानकटं प्रो०। समिधं प्रो०। पूर्णपात्रं प्रो०। समिधौ प्रो०। असंचरे प्रोक्षणीर्निधाय। तासु पवित्रे सादयेत् ।

॥ हविष्करणम् ॥

(अध्वर्युः) शर्मासीति कृष्णाजिनादानम् । ॐ शर्मासि ॥

अपेत्य पात्रेभ्योऽवधूनोत्यवधूतमिति ।

ॐ अवधूतरक्षोवधूताऽ अरातयः ॥ (उदकोपस्पर्शः)

प्रत्यग्ग्रीवमास्तृणात्यदित्यास्त्वगिति ।

ॐ अदित्यास्त्वगसिप्रतित्वादितिर्ब्बेत्तु ॥

सव्याशून्ये निदधात्युलूखलमद्रिरसि ग्रावासीति वा।

ॐ अद्रिरसि व्वानस्प्पत्यः प्रतित्त्वादित्त्यास्त्वग्ग्वेत्तु ॥

हविरावपत्यग्नेस्तनूरिति ।

ॐ अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देववीतये त्त्वागृह्णामि ॥

वाचं विसृजते (अध्वर्युः)। यजमानश्च । वैष्णवमन्त्रजपः। नानाबीजेष्वन्ते सामर्थ्यात् ।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्यपासुरे स्वाहा ॥

बृहद्भावेति मुसलमादत्ते। **ॐ बृहद्भावासि वानस्प्पत्त्यः ॥**

स इदमित्यवदधाति । **ॐ सऽ इदन्देवेब्म्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व ॥**

हविष्कृदेहीति त्रिराह्वयति। (पत्नीम् अग्नीधं वा)

ॐ हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥

अतः पत्न्यवहन्त्यन्यो वा। आह्वयत्याहन्त्यन्यो दृषदुपले कुक्कुटोऽसीति त्रिः शम्यया द्विर्दृषद् सकृदुपलाम् ।

ॐ कुक्कुटोसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावदत्त्वया व्वयःसंघात संघातञ्जेष्म ॥

पत्नी अग्नीद्रो वा तूष्णीं कण्डनम्।

वर्षवृद्धमसीति शूर्पमादत्ते। **ॐ व्वर्षवृद्धमसि ॥**

प्रतित्वेति हविरुद्वपति। **ॐ प्रतित्त्वा व्वर्षवृद्धं वेत्तु ॥**

परापूतमिति निष्पुनाति। **ॐ परापूतरक्षः परापूताऽअरातयः ॥** (उदकस्पर्शः)

वायुर्व इति विविनक्ति । **ॐ व्वायुर्बो व्विविनक्तु ।**

अध्वर्यवे तुषान् समर्पयति। तुषसमर्पणम्।

तूष्णीं पुनः **हविग्रहणम्। कण्डनम्। शूर्पादानम्। हविरुद्वपनम्। निष्पवनम् (उदकस्पर्शः)। विवेकीकरणम्।** (अध्वर्यवे) तुषसमर्पणम्। (अध्वर्युः) अपहतमिति तुषान्निरस्यति। ॐ अपहत रक्षः ॥ (उदकस्पर्शः) देवोव इति पात्र्यामोप्याभिमन्त्रयते ।

ॐ देवोवः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णात्त्वच्छिद्रेण पाणिना ।

परिशिष्ट

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ कातीयपौर्णमासेष्टिप्रयोगः ॥

सद्यः पक्षे हुते प्रातरग्निहोत्रे शुचिराचान्तः सपत्नीको यजमानः गार्हपत्यस्य पश्चादुपविश्य बद्धशिखो दर्भपाणिः यज्ञनारायणं स्मृत्वा आचम्य प्राणायामपूर्वकं देशकालौ संकीर्त्य एवं ग्रहगुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुन्यतिथौ ..... गोत्रोत्पन्नः अमुक शर्मा अहम्

ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं दर्शपौर्णमासाभ्यामहं यक्ष्ये। तत्रेदानीं पौर्णमासेष्ट्याहं यक्ष्ये।

इति संकल्प्य अध्वर्युः क्रमशः आहवनीयकुंडे दक्षिणाग्निकुण्डे च पञ्चभूसंस्कारान् कुर्यात् ।

॥ पञ्चभूसंस्काराः ॥

दौः परिसमुह्य। गोमयोदकेनोपलिप्य। वज्रेणोल्लिख्य। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुद्धृत्य ।

उदकेनाभ्युक्ष्य। अग्निमुपसमाधाय ।

॥ अभ्युद्धरणम् ॥

ॐ पौर्णमासेष्ट्यर्थं गार्हपत्यादाहवनीयमुद्धरामि।

ॐ पौर्णमासेष्ट्यर्थं गार्हपत्याद्दक्षिणाग्निमुद्धरामि।

॥ द्रव्यदेवताभिधानम्, अश्यन्वाधानञ्च ॥

अध्वर्युः यजमानो वा स्प्यं सव्यहस्ते धृत्वा षड्समिधो हस्ते गृहीत्वा अन्यन्वाधानं कुर्यात् ।

तत्रादौ द्रव्यदेवताभिधानम् ।

ॐ विहितं त्रितं द्वितं एकतं पात्र्यङ्गुलिप्रक्षालनेन ।

आघारदेवते- प्रजापतिम्, इन्द्रम् आज्येन।

प्रयाजदेवताः- समिधः, तनूनपात्, इडा, बर्हिषदम्, स्वाहेति आज्येन।

आज्यभागदेवते- अग्नि सोमं ध्रौवतः पञ्चगृहीतेनाज्येन ।

प्रधानदेवताः- अग्निमष्टाकपालेन पुरोडाशेन। अग्नीषोमावन्तराज्येनोपांशु।

अग्नीषोमावेकादशकपालेनपुरोडाशेन।

स्विष्टकृतम्- शेषेणाग्नि स्विष्टकृतम्।

अनुयाजदेवताः- देवं बर्हिषदम, देवं नरार्शसम्, देवमग्निस्विष्टकृतम् च देवान् औपभृतेनाज्येन ।

संस्रवः- विश्वान् देवान् संस्रवैः ।

पत्नीसंयाजदेवताः- सोमं, त्वष्टारं, देवानां पत्नीः, अग्नि गृहपतिं च पञ्चगृहीतेनाज्येनोपांशु गार्हपत्ये। अग्निमदब्धायुवसीतमं संस्रवैः ।

अथ दक्षिणाग्नौ होमाः- अग्निः संवेशपर्ति, सरस्वतीं यशोभगिन्यं च सकृद्गृहीतेनाज्येन । अग्नि पिष्टलेपैः।

वातं ध्रौवाज्येन आहवनीये। दिव्यं नभसं बर्हिषा। रक्षासिकणैः उत्करे। एताः देवताः सद्योऽहं यक्ष्ये। अन्वाहार्योदक्षिणा।

अथ वैकल्पिकस्मरणम्- सद्यः पक्षः। ममाग्नेपक्षः। पञ्चदशो वज्रः। यवैर्यागः व्रीहिभिर्वा। उत्तमेकाले व्रतोपायनम्। ये केचन वैकल्पिकपदार्थास्ते ऋत्विक् प्रत्ययेन मया अवधारिताः इत्यवधार्य। अन्यन्वाधानम्- अन्यन्वाधानमध्वर्युर्यजमानो वा। ममाग्नेत्याहवनीये समिधमादधाति । तूष्णीं द्वितीयाम् ।

ॐ ममाग्ने वच्चे विहवेष्वस्तु व्वयं त्वेन्धानास्तन्वंपुषेम। मद्यन्नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाऽऽध्यक्षेण पृतनाजयेम ॥

एवमेव गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ च।

ॐ ममाग्ने वच्चे..... पृतनाजयेम।। गार्हपत्ये समिधमादधाति तूष्णीं द्वितीयाम् ।

ॐ ममाग्ने वर्चे .....पृतनाजयेम।। दक्षिणाग्नौ समिधमादधाति तूष्णीं द्वितीयाम् ।

॥ षडासनानि ॥

ब्रह्मयजमानयोः वरणार्थम्-२, उपवेशनार्थम्-२, प्रणीता-१ पल्योश्चेति।

॥ ब्रह्मवरणम् ॥

विहारस्योत्तरतः ब्रह्मवरणम्। (उदङ्मुखोयजमानः प्राङ्मुखस्य ब्रह्मणः दक्षिणं जान्वालभ्य) ब्रह्माणं व्रणीते ब्रह्मिष्ठम्। अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा अहम्

ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं पौर्णमासेष्ट्याहं यक्ष्ये। तत्र मे त्वं ब्रह्मा भव।

भवामीति ब्रह्मा वदेत् । **ॐ भवामि ॥**

यजमानः भूपतेति वृणीते। **ॐ भूपते भुवनपते महतो भूतस्यपते ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे।**

(ब्रह्मा) वृतो जपति (अहं भूपतिरिति) ।

ॐ अहं भूपतिरहं भुवनपतिरहं महतो भूतस्य पतिर्भूर्भुवः स्वदैव सवितरेतन्त्वा वृणते बृहस्पतिं ब्रह्माणं तदहं मनसे प्रब्रवीमि मनो गायत्र्यै गायत्री त्रिष्टुभे त्रिष्टुनगत्यै जगत्यनुष्टुभेऽनुष्टुप्रजापतये प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यो बृहस्पतिर्देवानां ब्रह्मा ऽहं मनुष्याणाम्।।

(यजमानः) वाचस्पते यज्ञं गोपायेत्याह।

ॐ वाचस्पते यज्ञं गोपाय ॥

ततो ब्रह्मा - **ॐ गोपायामि ॥**

(ब्रह्मा) अपरेण वाऽऽहवनीयं दक्षिणाऽतिक्रामति। अहेदैधिषव्येति ब्रह्मसदनमीक्षते ।

ॐ अहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठाऽन्यस्य सदने सीद योऽस्मत्पाकतरः ॥

ब्रह्मसदनात्तृणं (नैऋत्यां दिशि) निरस्यति निरस्तः पाप्मेति।

ॐ निरस्तः पाप्मा सह तेन यं द्विष्मः । (उदकपस्पर्शः)

इदमहमिति ब्रह्मसदन आहवनीयमभिमुख उपविशति। वाग्यत आऽनुयाजप्रसवात् भागपरिहरणादि वा। आवृताऽवषड्कारासु ।

ॐ इदमहं बृहस्पतेः सदसि सीदामि प्रसूतो देवेन सवित्रा तदग्नये प्रब्रवीमि तद्वायवे तत्पृथिव्यै ॥

ततो ब्रह्मासनतः पश्चाद्यजमानः वेदिस्पृशन् स्वासने उपविशति। अत्र वा व्रतोपायनम् ।

॥ प्रणीताप्रणयनम् ॥

(ततो अध्वर्युः) गार्हपत्यमुत्तरेणोदकपात्रं (प्रणीतापात्रं) निधायाऽऽलभते भूतस्त्वेति ।

ॐ भूतस्त्वा भूत करिष्यामि।

ब्रह्मन्नप इति ब्रह्माणं पृच्छेत् । **ॐ ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि।**

ततो यजमानं प्रेषयेत् । **ॐ यजमान वाचं यच्छ।**

ब्रह्मा प्रणययज्ञमिति उपांशु पठित्वा प्रणयेत्युच्चैरध्वर्यु प्रणीताप्रणयनार्थमनुज्ञां दद्यात्। (उपांशु) ॐ प्रणय यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्तऽऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं

यजमानं च धेहि ॥ (उच्चैः) ॐ प्रणय ॥ अनुज्ञात उत्तरेणाहवणीयः संप्रति (अनतिदूरे) निदधाति कस्त्वेति।

ॐ कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ॥ नान्तरेण गच्छेयुः ।

परिस्तरणम्- तृणैरग्नान्परिस्तीर्य पुरस्तात् प्रथमम्। पुरस्तात्, दक्षिणतः, पश्चात्, उत्तरतः इतरथावृत्तिः। एवं गार्हपत्याद्दक्षिणाग्नौ परिस्तीर्य।

॥ पात्रासादनम् ॥

(ततो गार्हपत्यस्योत्तरतः) द्विशः पात्राणि सादयति। यजमानो वा। उद्ग्राणि प्राक्संस्थानि पत्राणि सादयेत् ।

शूर्पमग्निहोत्रहवणी। स्प्यः, कपालानि (१९)। शम्या, कृष्णाजिनम्। उलूखलं, मुसलम् । दृषदुपला। पात्री, पवित्रछेदनानि त्रीणि कुशतरुणानि। द्वे पवित्रे, उपवेषः। आज्यस्थाली, सोदकमुपसर्जनीपात्रम्। कुशमुष्टी, अन्वाहार्यपात्रम्। वेदितृणम्, अभ्रिः। योक्रम्, स्रुवः। जुहूः, उपभृत्। ध्रुवा, सन्नहनावच्छादनानि। परिधयः, विधृत्यौ। आज्यम्, पुरोडाशपात्र्यौ। होतृषदनम्, श्रृतावदानम्। औषधम्, प्राशित्रहरणे। अन्वाहार्यतण्डुलाः, अन्तर्धानकटः। पूर्णपात्रम्, कर्मापवर्गपक्षे समिद्वयम् । इध्मा, बर्हिः। उपकल्पनं, षडवत्तम् च ।

॥ हविर्ग्रहणम् ॥

श्रपणस्य पश्चादुत्तरतो वा (औषधकरणम्)। पात्र्यां वा स्फ्योपहितायाम् । कर्मणे वामिति शूर्पाग्निहोत्रहवण्यादाय वाचं यच्छति। **ॐ कर्मणे वां व्वेषाय वाम् (आददे) ॥**

(तयोः) प्रतपनम् प्रत्युष्टं निष्टप्तमिति वा। **ॐ प्रत्त्युष्टरक्षः प्रत्त्युष्टाऽअरातयः ॥ धूरसीति धूरभिमर्शनम्।** धूरिषाऽऽरोहणानि पात्रीबिले (स्पर्शनं) जपति।

(उदकस्पर्शः) गच्छत्युर्वन्तरिक्षमिति । **ॐ उर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥**

ॐ धूरसिधूर्व्वधूर्व्वन्तन्धूर्व तं य्योऽस्मान्पूर्व्वति तन्पूर्व यं व्वयन्पूर्वामः ॥

देवानामसिव्वह्नितमःसस्निन्नतमम्पप्रितमञ्जुष्टतमन्देवहूतमम् । अद्भुतमसि हविर्द्धानन्द हस्वमाहव्वार्मा ते यज्ञपतिहर्ध्वार्षीत् ॥

विष्णुस्त्वेत्यारोहणम्। धूरिषाऽऽरोहणानि पात्रीबिले (स्पर्शन) जपति।

ॐ व्विष्णुस्त्वा क्रमताम् ॥

प्रेक्षत उरुव्वातायेति हविष्यान्। ॐ उरु व्वाताय भव ॥

अपहतमिति निरस्यत्यन्यत्। अविद्यमानेऽभिमृशेत्। ॐ अपहतरक्षः ॥ (उदकोपस्पर्शः।)

यच्छन्तामित्यालभते। **ॐ यच्छन्ताम् पञ्च ॥**

देवस्यत्वेति गृह्णाति मन्त्रेण त्रिवारं, तूष्णीं चतुर्थम् यथादेवतम्।

ॐ देवस्य त्त्वा सवितुःप्रसवेश्विनोर्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् ॥

अग्नये जुष्टं गृह्णामि ॥ प्र., द्वि., तृ., तूष्णीं च०।

ॐ देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेश्विनोर्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् ॥ अग्नीषोमाब्भ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ प्र., द्वि., तृ., तूष्णीं च०।

भूतायत्वेति शेषाभिमर्शनम्। **ॐ भूताय त्त्वा नारातये परिशेषयामि ॥**

स्वरिति प्राङ् ईक्षते। **ॐ स्वरभिविक्ख्येषम् ॥**

दृहन्तामित्युत्थानम्। **ॐ दृंहन्तान्दुर्य्याः पृथिव्याम् ॥**

गच्छत्युर्वन्तरिक्षमिति। **ॐ उर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥**

श्रपणस्य पश्चात्सादयति पृथिव्यास्त्वेति। **ॐ पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्म्यदित्त्याऽउपस्थेग्ने हव्व्यरक्ष ॥**

॥ पवित्रकरणम् ॥

कुशौ समावप्रशीर्णाग्रावनन्तर्गर्भौ कुशैः छिनत्ति पवित्रेस्थ इति।

ॐ पवित्त्रे स्थो व्वैष्णव्यौ ॥

हविग्रहण्यामपः कृत्वा ताभ्यामुत्पुनाति सवितुर्व इति।

ॐ सवितुर्व्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्त्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥

ता स्थानं तयोः। सव्ये कृत्वा दक्षिणेनोदिङ्गयति देवीराप इति।

ॐ देवीरापोऽ अग्रेगुवोऽ अग्रेपुवोग्रऽ इममद्य यज्ञन्नयताग्रे यज्ञपतिःसुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्। युष्म्माऽ इन्द्रो वृणीत व्वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीद्धं व्वृत्रतूर्य्ये ॥

प्रोक्षिता स्थेति तासां प्रोक्षणम्। **ॐ प्रोक्षिता स्त्थ ॥**

॥ हविः-पात्रप्रोक्षणम् ॥

ब्रह्मन् हविरिति ब्रह्माणं पृच्छेत्। **ॐ ब्रह्मन् हविः प्रोक्षिष्यामि ॥**

एवमामन्त्रितो ब्रह्मा प्रोक्षयज्ञमित्युपांशु पठित्वा प्रोक्षेत्युच्चैरध्वर्यु प्रोक्षणार्थमनुज्ञां दद्यात्

। (उपांशु) **ॐ प्रोक्ष यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्त ऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥** (उच्चैः) ॐ प्रोक्ष ॥

ततो अध्वर्युः सपवित्रं प्रोक्षण्युदकमादाय शूर्पस्थं हविः अग्नये त्वेत्यादि यथादेवतानामग्रहणेन प्रोक्षयेत्।

ॐ अग्नये त्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥

ॐ अग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥

पात्राणि दैव्यायेति । (प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्तिः)

ॐ दैव्यायकर्मणे शुन्धद्वं देवयज्यायै यद्वोशुद्धाः पराजग्मुरिदं व्वस्तच्छुन्धामि ॥ वज्र प्रोक्षामि ॥

एवमादौ वज्रं प्रोक्ष्य तमेव सव्ये कृत्वा इतराणि प्रोक्षयेत्। प्रोक्षामीति सर्वत्र। तद्यथा-

ॐ दैव्यायकर्मणे०... व्वस्तच्छुन्धामि। कृष्णाजिनम्प्रोक्षामि ।। उलूखलं प्रो०। मुसलं प्रो०। शम्यां प्रो०। दृषदं प्रो०। उपलां प्रो०। शूर्प प्रो०। पात्री प्रो०। उपवेषं प्रो०। कपालानि प्रो०। आज्यस्थालीं प्रो०। उपसर्जनीपात्रं प्रो०। कुशमुष्टीं प्रो०। अन्वाहार्यपात्रं प्रो०। वेदितृणं प्रो०। अभ्रिं प्रो०। यो प्रो०। स्रुवं प्रो०। जुहू प्रो०। उपभृतं प्रो०। ध्रुवां प्रो०। सन्नहनावच्छादनानि प्रो०। परिधीन् प्रो०। विद्युत्यौ प्रो०। वज्रवर्ज्यम् आज्यं प्रो०। पुरोडाशपात्रीं प्रो०। होतृषदनं प्रो०। श्रृतावदानं प्रो० । औषधं प्रो०। प्राशित्रहरणे प्रो०। अन्वाहार्यतण्डुलान् प्रो० । अंतर्धानकटं प्रो०। समिधं प्रो०। पूर्णपात्रं प्रो०। समिधौ प्रो०। असंचरे प्रोक्षणीर्निधाय। तासु पवित्रे सादयेत् ।

॥ हविष्करणम् ॥

(अध्वर्युः) शर्मासीति कृष्णाजिनादानम् । ॐ शर्मासि ॥

अपेत्य पात्रेभ्योऽवधूनोत्यवधूतमिति ।

ॐ अवधूतरक्षोवधूताऽ अरातयः ॥ (उदकोपस्पर्शः)

प्रत्यग्ग्रीवमास्तृणात्यदित्यास्त्वगिति ।

ॐ अदित्यास्त्वगसिप्रतित्वादितिर्ब्बेत्तु ॥

सव्याशून्ये निदधात्युलूखलमद्रिरसि ग्रावासीति वा।

ॐ अद्रिरसि व्वानस्प्पत्यः प्रतित्त्वादित्त्यास्त्वग्ग्वेत्तु ॥

हविरावपत्यग्नेस्तनूरिति ।

ॐ अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देववीतये त्त्वागृह्णामि ॥

वाचं विसृजते (अध्वर्युः)। यजमानश्च । वैष्णवमन्त्रजपः। नानाबीजेष्वन्ते सामर्थ्यात् ।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्यपासुरे स्वाहा ॥

बृहद्भावेति मुसलमादत्ते। **ॐ बृहद्भावासि वानस्प्पत्त्यः ॥**

स इदमित्यवदधाति । **ॐ सऽ इदन्देवेब्म्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व ॥**

हविष्कृदेहीति त्रिराह्वयति। (पत्नीम् अग्नीधं वा)

ॐ हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥

अतः पत्न्यवहन्त्यन्यो वा। आह्वयत्याहन्त्यन्यो दृषदुपले कुक्कुटोऽसीति त्रिः शम्यया द्विर्दृषद् सकृदुपलाम् ।

ॐ कुक्कुटोसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावदत्त्वया व्वयःसंघात संघातञ्जेष्म ॥

पत्नी अग्नीद्रो वा तूष्णीं कण्डनम्।

वर्षवृद्धमसीति शूर्पमादत्ते। **ॐ व्वर्षवृद्धमसि ॥**

प्रतित्वेति हविरुद्वपति। **ॐ प्रतित्त्वा व्वर्षवृद्धं वेत्तु ॥**

परापूतमिति निष्पुनाति। **ॐ परापूतरक्षः परापूताऽअरातयः ॥** (उदकस्पर्शः)

वायुर्व इति विविनक्ति । **ॐ व्वायुर्बो व्विविनक्तु ।**

अध्वर्यवे तुषान् समर्पयति। तुषसमर्पणम्।

तूष्णीं पुनः **हविग्रहणम्। कण्डनम्। शूर्पादानम्। हविरुद्वपनम्। निष्पवनम् (उदकस्पर्शः)। विवेकीकरणम्।** (अध्वर्यवे) तुषसमर्पणम्। (अध्वर्युः) अपहतमिति तुषान्निरस्यति। ॐ अपहत रक्षः ॥ (उदकस्पर्शः) देवोव इति पात्र्यामोप्याभिमन्त्रयते ।

ॐ देवोवः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णात्त्वच्छिद्रेण पाणिना ।

॥ त्रिः फलीकरोति ॥

अध्वर्युना तूष्णीं पुनः हविर्ग्रहणम्। कण्डनम्। शूर्पादानम्। हविरुद्वपनम्। निष्पवनम् (उदकस्पर्शः)। विवेकीकरणम्। (अग्नीधे) कणनिधानम्। (एवं पुनः द्विवारम्) पेषणोपधाने युगपत् । तत्र पेषणमध्वर्युः उपाधानमग्नीत् कुर्यात् ।

॥ कपालोपधानम् ॥

(अग्नीत्) धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय। ॐ धृष्टिरसि ॥ अपाग्नऽइत्यङ्गारान्प्राचः करोति ।

ॐ अपाग्नेऽअग्निमामादञ्जहिनिष्क्कव्याद् सेघ ॥ आदेवयजमित्यङ्गारमाहृत्य। ॐ आ देवयजं व्वह ॥ कपालेनावच्छादयति ध्रुवमसीति। (अत्र अष्टकपालानामुपधानम्)

ॐ ध्रुवमसि पृथिवीन्दृश्ह ब्रह्मवनि त्त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि ब्भ्रातृव्व्यस्य व्वधाय ॥ सव्यांगुल्याऽशून्येऽङ्गारं निदधात्यग्ने ब्रह्मेति (प्रतिकपालम्)। ॐ अग्ने ब्रह्मगृब्भ्णीष्व ॥ धरुणमिति पश्चात् ।

ॐ धरुणमस्यन्तरिक्षं दृ९ह व्ब्रह्मवनि त्त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि ब्भ्रातृव्व्यस्य अङ्गारं निदधाति ॐ अग्ने ब्रह्म गृब्भ्णीष्व ॥ व्वधाय ।।

पुरस्ताद्धर्त्रमिति ।

ॐ धर्त्तमसि दिवंदृ९ह व्ब्रह्मवनि त्त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि ब्भ्रातृव्यस्य व्वधाय ।। अङ्गारं निदधाति - ॐ अग्ने ब्रह्म गृब्भ्णीष्व ॥

विश्वाभ्य इति दक्षिणतः ।

ॐ विश्वाब्भ्यस्त्वाशाब्भ्यऽउपदधामि ॥ अङ्गारं निदधाति - ॐ अग्ने ब्रह्म गृब्भ्णीष्व ॥ (अन्यानि सर्वाणि) समं विभज्य द्वे दक्षिणत एवमुत्तरतश्चितस्थेति (निदध्यात्) । अधिकं दक्षिणतः। ॐ चितस्त्थोर्द्धचितः ॥ अङ्गारं निदधाति ॐ अग्ने ब्रह्म गृब्भ्णीष्व ॥ एवं अष्टकपालानामुपधानं कृत्वा अग्नीषोमयोः एकादशकपलानामुपधानं कूर्यात्। भृगूणामित्यङ्गारैरभ्यूहति। ॐ भृगूणामङ्गिरसान्तपसा तप्यद्धम् ॥ (अग्नीत् गार्हपत्ये) उपसर्जनीरधिश्रयति ।

॥ हविः पेषणम् ॥

(पेषणमध्वर्युः) शर्मासीति कृष्णाजिनादानम् । ॐ शर्मासि ॥ अपेत्य पात्रेभ्योऽ वधुनोत्यवधूतमिति । ॐ अवधूत रक्षोवधूताऽअरातयः ॥ (उदकस्पर्शः) प्रत्यग्ग्रीवमास्तृणात्यदित्यास्त्वगिति, (उपरिलोमम्) ।

ॐ अदित्यास्त्वगसि प्प्रतित्त्वादितिर्व्वेत्तु ॥ (सव्याशून्ये) तस्मिन्दृषदं धिषणासीति ।

ॐ धिषणासि पर्व्वतीप्प्रतित्त्वादित्यास्त्वग्ग्वेत्तु ॥ पश्चाच्छम्यामुपोहत्युदीचीं दिव इति। ० दिवस्कम्भनीरसि ॥ दृषद्युपलां धिषणाऽसीति। ॐ धिषणासि पार्व्वतेयी प्रतित्त्वा पर्व्वतीव्वेत्तु ॥ धान्यमसीति तण्डुलानोप्य। (यवान्वा) ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् ॥ पिनष्टि प्राणायत्वेति प्रतिमन्त्रम्

।

ॐ प्राणाय त्त्वा (पिनष्मि) ॥ ॐ उदानाय त्त्वा (पिनष्मि) । ॥ पिष्यमाणेषु निर्वपत्यन्यो (ब्रह्मा) महीनामित्याज्यम् । ॐ महीनां पयोसि ॥

निरुप्याज्यं वेदोऽसीति यजमानो वेदं करोति ।

ॐ व्वेदोसि येन त्त्वं देव व्वेद देवेब्य्यो व्वेदो भवस्त्तेन मह्यं व्वेदो भूयाः ॥ पुनः व्यानायत्वेति पिनष्टि। ॐ व्व्यानाय त्त्वा (पिनष्मि) । ॥ दीर्घामिति कृष्णाजिने प्रोहति।

ॐ दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्य्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णात्त्वच्छिद्रेण पाणिना ॥

चक्षुषे त्वेतीक्षते । ॐ चक्षुषे त्त्वा (ईक्षे) ॥ पात्र्याः सपवित्रायां पिष्टान्यावपति देवस्यत्वेति ।

ॐ देवस्त्त्वा सवितुः प्रसवेश्श्विनोर्बाहुब्भ्याम्पूष्ण्णो हस्ताब्भ्या संव्वपामि ॥ (अध्वर्युः) श्रपणस्य पश्चादुपविशत्यन्तर्वेदि वा। उपसर्जनीरानयत्यन्यः। पवित्राभ्यां प्रतिगृह्णाति समाप इति। (अग्नीत् स्फ्यं सव्ये कृत्वा उपसर्जनीः उदगुद्वास्य अध्वर्योर्दक्षिणेनानीय पिष्टानामुपरि सपवित्रस्य अध्वर्युहस्तस्योपरि निनयेत् । अध्वर्युश्च सपवित्राभ्यां गृह्णाति समाप इति।)

ॐ समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन। सरेवतीर्जगतीभिः

पृच्य्यन्तासम्मधुमतीमधुमतीभिः पृच्य्यन्ताम्॥ संयौति जनयत्यै त्वेति । ॐ जनयत्त्यै त्त्वा सँय्यौमि ॥ संयवनम्। पिण्डवन्धनम्। अवदानकरणम्। पिष्टलेपापनयनम्। ततो समं विभज्यासहविष्यन्नालभते। यथादेवतमन्यत्।

ॐ इदमग्नेः। इदमग्नीषोमयोः ।

इषेत्वेत्याज्यमधिश्रयत्यन्यः (ब्रह्मा वेदोपग्रहेण।) ॐ इषेत्त्वा (अधिश्रयामि) । घर्मोऽसीति पुरोडाशौ युगपत् (अधिश्रयनम्)। ॐ घर्मोसि व्विश्श्वायुः ॥ उरुप्रथा इति प्रथयति यावत्कपालमनतिपृथुम् ।

ॐ उरुप्प्रथाऽउरुप्प्रथस्वोरुते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥

अग्निष्ट इत्यद्भिरभिमृशति सकृत् त्रिर्वा । ॐ अग्निष्टे त्त्वचम्मा हिश्सीत् ॥ ततो पिष्टलेपापनयनम्, पात्र्याङ्गुलिप्रक्षालनम्। पर्यग्निकरोत्यन्तरितमिति सहाज्यम्।

ॐ अंतरित रक्षन्तरिताऽअरातयः ॥ (उदकस्पर्शः) देवस्त्वेति श्रपणम् । ॐ देवस्त्वा सविता श्रश्रपयतु व्वर्षिष्ठेधिनाके ॥ मा भेरित्यालभते। ३० माभेर्मासंव्विक्क्थाः ॥ अतमेरुरिति श्रृतावभिवासयति भस्मना वेदेनोपवेषेण वा।

ॐ अतमेरुर्य्यज्ञोतमेरुर्य्यजमानस्य प्रजा भूयात् ॥

पात्र्यङ्गुलिप्रक्षालनमाप्तेभ्यो निनयति अभितप्य प्रत्यगसस्यन्दमानं त्रितायत्वेति प्रतिमन्त्रम् । (प्राङः खननम् प्रत्यङ् च निनयनम्। नमम इति यजमानः त्यागं कुर्यात् ।)

ॐ त्रिताय त्त्वा (निनयामि) ॥ यज० - इदं त्रितायाऽय न मम ॥

ॐ द्विताय त्त्वा (निनयामि) ॥ यज०- इदं द्वितायाऽय न मम ॥

ॐ एकताय त्त्वा (निनयामि) ॥ यज० - इदं एकतायाप्याय न मम ॥

(अथ द्विः प्रक्षाल्य) अन्वाहार्य दक्षिणाग्नावधिश्रयति। अत्र वा व्रतोपायनम् ।

॥ वेदिमानम् ॥

अपरेणाऽऽहवनीयं वेदिङ्खनति त्र्यङ्गुलखातां व्याममात्रीं पश्चात् । त्र्यरनि प्राचीमपरिमितां वा, प्राक्प्रवणामुदग्वा मध्यसङ्गृहीतामग्निमभितो सौ। (स्फ्येन वेदिमानम्। प्रथमं पश्चात् दक्षिणोत्तरतः प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः । त्र्यरत्नि प्राचीं प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः। प्राक् दक्षिणोत्तरां प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः । । मध्यसंग्रहीताम्। अग्निमभितो सौ। श्रोण्यौ च।)

वेदिं परिसमुह्य वितृतीयेऽन्नीदुत्तरत उत्करं करोति ।

॥ स्तम्बयजुर्हरणम् ॥

(अध्वर्युः) देवस्यत्वेति स्प्यमादाय सतृणम्।

ॐ देवस्यत्त्वा सवितुः प्रसवेरिश्वनोर्बाहुब्याम्पूष्णो हस्ताब्याम् ॥ आददेद्धरकृतं देवेब्यः ॥ (स्प्यं) सव्येकृत्वा दक्षिणेनालभ्य जपति इन्द्रस्येति ।

ॐ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्त्रभृष्टिः शततेजा व्वायुरसि तिग्ग्मतेजा द्विषतो व्वधः ॥

नोपस्पृशेत् पृथिव्यात्मानौ तेन स्तम्बयजुर्हरिष्यन् ।

(उच्चैः) ॐ परिगृहाण ॥

(अनुज्ञातेऽध्वर्युः) पूर्व परिग्रहं परिगृह्णाति दक्षिणतः, पश्चादुत्तरतश्च स्फ्वेन गायत्रेणेति प्रतिमन्त्रम् ।

ॐ गायत्त्रेण त्त्वाच्छन्दसा परिगृह्णाामि ॥ (दक्षिणतः)

ॐ त्रैष्टुभेन त्त्वाच्छन्दसा परिगृह्णाामि ॥ (पश्चात्)

ॐ जागतेन त्त्वाच्छन्दसा परिगृह्णाामि ॥ (उत्तरतः)

वेद्यां (स्फ्येन) त्रिरुल्लिख्याऽऽह हरत्रिरिति । ॐ हर त्रिः।

हृत्वाऽग्नील्लेखाः संमृशति। अध्वर्युः तूष्णीं अभ्या खनति। ततो उत्तरपरिग्रहः।

॥ उत्तरपरिग्रहः ॥

ब्रह्मन्निति अध्वर्युः ब्रह्माणमामंत्रयेत् । ॐ ब्रह्मन्नुत्तरं परिग्रहं परिगृहीष्यामि ॥

ततो ब्रह्मा वृहस्पत इत्युपांशु पठित्वा परिगृहाणेत्युचैरध्वर्युमनुजानीयात् ।

(उपांशु) ॐ बृहस्प्पते परिगृहाण वेदि सुगावो देवाः सदनानि सन्त्वस्यां बर्हिः प्रथताःसाध्वन्तर्हि स्रा पृथिवी देवी देव्यस्तु देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु। सप्त ऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्त तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥

(उच्चैः) ॐ परिगृहाण ॥

(अनुज्ञातेऽध्वर्युः) उत्तरं परिग्रहं परिगृह्णाति सुक्ष्मास्योनोर्जस्वतीति प्रतिमन्त्रम् पूर्ववत् (दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्च)।

ॐ सुक्ष्माचासि शिवाचासि ॥

ॐ स्योनाचासि सुषदाचासि ॥

ॐ ऊर्जस्वतीचासि पयस्वती च ॥

पुरा क्रूरस्येत्यनुमार्टि।

ॐ पुरा क्क्रूरस्य व्विसृपो व्विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीञ्जीवदानुम् ॥ यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामुधीरासोऽ अनुदिश्य यजन्ते ॥

अध्यधिवेदि प्रोक्षणीर्धारयति। अन्योऽथ स्प्यमुद्यम्याह प्रोक्षणीरासादयेति ।

ॐ प्रोक्षणीरासादय। इध्मं बर्हिरुपसादय। स्रुचः संमृड्डि। पत्नी सन्नह्य। आज्येनो देहि ॥

आपन्नस्तृणं निरस्येत्। वेद्यां प्रोक्षणीर्निदधाति । प्राक्स्तरणाद्वेदिं नावमृशेत् । द्विषतो वधेति स्प्यमुदञ्चं प्रहरति । ॐ द्विषतो व्बधोसि ॥ अवनिज्य पाणी, अपरेण प्रणीता स्प्यं निदधाति। इध्मा बर्हिश्च। पूर्वमिध्मम्। प्रणीतादक्षिणेन वाऽऽहत्य ।

॥ स्रुक्सम्मार्जनम् ॥

वेदाग्रनिष्पत्तिः । अध्वर्युः स्रुवं प्रतप्य पूर्ववद् प्रत्युष्टमिति ।

ॐ प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयः ॥ (उदकस्पर्शः)

वेदाग्रैरन्तरतः प्राक्संमाष्यनिशित इति। विपर्यस्य बहिर्मूलैः प्राङ् उत्क्रम्य ।

ॐ अनिशितोसि सपत्नक्षिद्वाजिनन्त्वा व्वाजेच्द्यायै सम्मार्जिज्म ।

प्रतप्य प्रतप्यप्रयच्छति। (प्रत्युष्टमिति पुनः प्रतप्य अग्नीधे प्रयच्छति।)

ॐ प्रत्त्युष्टश्रक्षः प्रत्त्युष्टाऽअरातयः ॥ (उदकस्पर्शः) अनिशितेति स्रुचः। (जुहूमादाय पूर्ववद् वेदात्रैरन्तरतः प्राक्संमार्ध्वनिशितेति ।)

ॐ अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीन्त्वा व्वाजेच्द्यायै सम्मार्जिज्म । गार्हपत्ये प्रतपति प्रत्युष्टमिति। ॐ प्रत्त्युष्टरक्षः प्रत्त्युष्टाऽ अरातयः ॥ (उदकस्पर्शः) प्रतप्य अग्नीधे समर्पनम् । एवं जुहूवदेव उपभृतं ध्रुवां च सम्मार्जनं विधाय प्रतप्य अग्नीधे समर्पयेत्। अग्नीत् वेद्यां प्रोक्षण्योपरि उदक्संस्थं स्थापयेत् । तूष्णीं प्राशित्रहरणे। श्रृतावदानम्। पुरोडाशपात्र्यौ। इडापात्रीं च। सम्मार्जनान्यपास्यति (उत्करे करोति)। आहवनीये प्रासनमेके।

॥ पत्नीसन्नहनम् ॥

पत्नी सन्नह्यति प्रत्यग्दक्षिणत उपविष्टां गार्हपत्यस्य, मुञ्जयोक्रेण त्रिवृता, परिहरत्यधिवा-सोऽदित्यै राख्नेति ।

पत्नी-दक्षिणं पाशमुत्तरे प्रतिमुच्योर्ध्वमुद्गृह्णति विष्णोर्वैष्य इति। न ग्रन्थि करोति ।

अदित्त्यै रास्न्नासि । ॥

पत्नी- **व्विष्णोर्वैष्णोसि ॥**

ऊर्जेत्वेत्याज्यमुद्वास्य। **ॐ ऊर्जेत्त्वा (उद्वासयामि) ॥**

पत्त्याज्यमवेक्षस्व इति पत्नीं प्रति प्रैषः। **ॐ पत्त्याज्यमवेक्षस्व ॥** पत्नीमवेक्षयत्यदब्धेनेति (वेदोपगृहेण)।

ॐ अदब्धेन त्त्वा चक्षुषावपश्श्यामि ॥ अग्नेजिड्ख्वासि सुहूर्दैवेब्म्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥

वेद्यां करोत्यपरं प्रोक्षणीभ्यः । (वेदोपगृहेणाध्वर्युः गृहीतमाज्यं वेद्यां करोति । (पवित्रे आदाय) सवितुस्त्वेत्याज्यमुत्पुनाति । (वेदोपग्रहेण ।)

ॐ सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्त्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिम्भिः ॥

प्रोक्षणीश्च पूर्ववत् । (वज्रोपग्रहेण ।)

ॐ सवितुर्व्वः प्रसवऽउत्त्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्त्रेण सूर्य्यस्य रश्मिम्भिः ॥

आज्यमवेक्षते तेजोसीति यजमानो वा। (वेदोपग्रहेण)

ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि ॥

॥ जुह्वादिष्वाज्यग्रहणम् ॥

सुवेणाज्यग्रहणं चतुर्जुह्वां धामनामेति सकृन्मन्त्रः । (अध्वर्युः सव्येन जुहूं वेदं च गृहीत्वा दक्षिणेन स्रुवमादाय तेनाज्यं गृह्णाति चतुर्जुह्वां धामनामेति सकृन्मन्त्रेण त्रिस्तूष्णीम् । पंचावत्तीनां कृते सकृन्मन्त्रेण चत्वारः तूष्णीम्।)

ॐ धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि ॥ अष्टावुभृत्यल्पीयोऽनुयाजाश्चेत्। (अनेनैव मन्त्रेण सकृन्मन्त्रेण सप्ततूष्णीम्। पंचावत्तीनां कृते दश उपभृति तत्र सकृन्मन्त्रेण नव तूष्णीम्।) एवमेव ध्रुवायां च जुह्ववत्। स्थाल्यपसरणम् ।

॥ इध्म-वेदि-बर्हिषां प्रोक्षणम् ॥

ब्रह्मन्निति ब्रह्माणं प्रार्थयेदध्वर्युः । ॐ ब्रह्मन्निध्मं प्रोक्षिष्यामि ॥ ततो ब्रह्मा प्रोक्षयज्ञमित्युपांशु पठित्वा प्रोक्षेत्युच्चैरध्वर्युमनुजानीयात् ।

(उपांशु) ॐ प्रोक्ष यज्ञं देवता वर्धय त्त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्त ऋषीणाश्सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥ (उच्चैः) ॐ प्रोक्ष ॥ इध्मं प्रोक्षति विसृश्स्य (कृष्णोऽसीति) ।

ॐ कृष्णोस्याखरेष्डोग्नयेत्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥

वेदिं च (वेदिरसीति)। **ॐ व्वेदिरसि बर्हिषे त्त्वा जुष्टाम्प्रोक्षामि ॥**

बर्हिः प्रतिगृह्य वेद्यां कृत्वा पुरस्ताद्ग्रन्थि। ब्रह्मन्निति ब्रह्माणमामन्त्रयते।

ॐ ब्रह्मन् बर्हिः प्रोक्षिष्यामि ॥

ततो ब्रह्मा प्रोक्षयज्ञमित्युपांशु पठित्वा प्रोक्षेत्युच्चैरध्वर्युमनुजानीयात् ।

(उपांशु) ॐ प्रोक्ष यज्ञं देवता वर्धय त्त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्त ऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥ (उच्चैः) ॐ प्रोक्ष ॥

अनुज्ञातेऽध्वर्युः बर्हिरसीति बर्हिः प्रोक्षति।

ॐ बर्हिरसि सुग्गम्यस्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ शेषं मूलेषूपसिञ्चत्यदित्यै व्युन्दनमिति। ॐ अदित्त्यै व्व्युन्दनमसि ॥ पवित्रे निधाय प्रणीतासु बर्हिर्विसृस्य पुरस्तात्प्रस्तरग्रहणम् विष्णोरिति ।

ॐ व्विष्णो स्तुपोसि ॥

॥ वेदिस्तरणम् ॥

(प्रस्तरं तूष्णीं) ब्रह्मणे प्रदाय, सन्नहनं विस्रस्य दक्षिणस्यां वेदिश्रोणौ निधाय अन्यैरवच्छाद्य। (आपन्नस्तृणं निरस्येत्। बर्हिषस्त्रेधाकरणम्। तृतीयांशग्रहणम्।) वेदिस्तृणात्यूर्णम्रदसमिति त्रिवृत् अधरमूलम्। प्रतिपर्याये मन्त्रावृत्तिः ।

ॐ ऊर्णम्प्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्त्थां देवेब्य्यः ॥

(ब्रह्मणः प्रस्तरमादाय।) इध्मात्समिधमादाय आहवनीयं कल्पयत्युपर्युपरि प्रस्तरं धारयन् । उल्मुके उदूहत्यनुयाजाश्चेत् ।

॥ परिधिनिधानम् ॥

परिधीन् परिदधात्यार्दानेकवृक्षीयान् बाहुमात्रान् पालाशवैकंकतकार्म्मर्यवैल्वान् पूर्वालाभे पूर्वालाभ उत्तरान, खादी रौदुम्बरान्वा मध्यम-दक्षिणोत्तरान् गंधर्व इति प्रतिमन्त्रम् ।

ॐ गन्धर्व्वस्त्वा व्विश्श्वावसुः परिदधातु व्विश्श्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽ ईडितः ॥

ॐ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो व्विश्श्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥

ॐ यस्ते प्राणः पशुषु प्रविष्टो देवानां विष्ठामनु यो वितस्थे ॥ आत्मन्वान् सोमघृतवान्हिभूत्वाऽग्निं गच्छ स्वर्यजमानाय विन्द ॥ (इति आग्नेयं)

ॐ यस्ते प्राणः.. ..भूत्वान्नीषोमौ गच्छ स्वर्यजमानाय विन्द ॥ (इति ऐन्द्राग्नं) (स्रुवेणाज्यमादाय) प्रत्यनक्ति कपालानि यानिधर्म इति। तूष्णीं वा।

तूष्णीं वा। ॐ यानि धर्मे कपालान्युपचिन्वंतिवेधसः ॥ पूष्णस्तान्यपिव्रतऽ इंद्रवायू विमुंचताम् ॥

ॐ प्रथममनज्मि, द्वितीयमनज्मि, तृतीयमनज्मि, चतुर्थमनज्मि, इत्येवं प्रत्यनक्ति। संख्ययोद्वासयति । यथा- प्रथममुद्वासयामि ॥ द्वितीयमुद्वासयामि ॥ तृतीयमुद्वासयामि इत्येवम् यावत् कपालम्।

॥ हविषामासादनम् ॥

प्रियेण धान्नेति हवी ञ्षष वेद्यां कृत्वा (ध्रुवामुत्तरतः स्थालीपूर्वकम्। वज्रवर्जमाज्यम्।)

ॐ प्रियेण धाम्ना प्रिय सदऽ आसीद ॥ ध्रुवाऽअसदन्निति सर्वान्यालभते। (पात्राणि हवींषि च आलभते यथाऽऽसादनक्रमेण। वज्रवर्जमाज्यम्।)

ॐ ध्रुवाऽअसदन्नृतस्ययोनौ ता व्विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिम् ॥

पाहिमामित्यात्मानम् (आमालभेत्।)

ॐ पाहि माँ य्यज्ञान्यम् ॥ (उदकस्पर्शः)

॥ व्रतग्रहणम् ॥

अत्र वा व्रतोपायनम्। अन्तरेणापराग्नी गत्वापरेणाहवनीयं प्राङ्मिष्ठन्नग्निमीक्षमाणोऽप उपस्पृश्य व्रतमुपैत्यग्ने व्रतपत इदमहमिति वा।

ॐ अग्ने व्व्रतपते व्व्रतं चरिष्ष्यामि तच्छकेयं तन्न्मे राज्यताम् ॥[1]

(अध्वर्युः) होतृषदनं कृत्वाऽपरेणवेदि श्रोणि वोत्तरेण । (होतरेहीति होतारमामंत्रयेत्) ।

ॐ होतरे ३हि ॥

(ततो होता आचम्य) संचरेण (प्रणीतोत्करावंतरेण) प्रविश्यापरेणाहवनीयं प्राङ्मिष्ठति ।

॥ सामिधेन्यनुवचनम् ॥

(अध्वर्युः) इध्मात्समिधमादाय (आह)। ॐ अग्नये समिध्यमानायानुब्रू३ हि ॥ अध्वर्युप्रेषितो होता ब्रह्मन्त्सामिधेनीति ब्रह्माणमामन्त्रयेत् । ॐ ब्रह्मन्त्सामिधेनीरनुवक्ष्यामि ॥ ब्रह्मा प्रजापतेति उपांशु पठित्वा अनुब्रूहीति उच्चैर्होतारं प्रेषयेत्।

(उपांशु) ॐ प्रजापतेऽनुब्रूहि यज्ञं देवता वर्धयत्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानो अस्तु सप्त ऋषीणा सुकृतां यत्रलोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च घेहि ॥

(उच्चैः) ॐ अनुब्रूऽऽहि ॥

ब्रह्मप्रसूतः (होता) अंगुलिपर्वाग्रमांससंहितम् हृदयदेशेऽञ्जलिं प्रतिष्ठाप्य दक्षिणं च पादं वेद्याः (उत्तर) श्रोणिसमं कृत्वा द्यावापृथिव्योरंतरमीक्षमाणः नम इति कन्दं जपेत्। (मन्दस्वरेण)।

ॐ नमः प्रवक्रे नम उपवने नमो द्रष्टे नमोऽनुख्यात्रे। क इदमनुवक्ष्यति स इदमनुवक्ष्यति क आत्विज्यं करिष्यति स आत्विज्यं करिष्यत्पृचः प्रपद्ये यजुः प्रपद्ये साम प्रपद्ये ब्रह्म प्रपद्येऽनार्ता छन्दसां मातरं प्रपद्ये भूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये भूर्भुवः स्वः सर्व प्रपद्ये।

(होतृजपान्ते) सन्तन्वन्निवमेऽनुब्रू३हीत्याह यजमानः ।

ॐ सन्तन्वन्निवमे ऽनुब्रू३ हि ॥

(ततो यजमानः) अंगुष्ठाभ्यां च अवबाधते पाद्याभ्याम्। यावत्सामिधेनि वा इदमहं तावतिथेन वज्रेणेति ।

ॐ इदमहं पञ्चदशेन वज्रेण भ्रातृव्यमवबाधे ॥

प्रतिप्रणवमाधानम्। (अध्वर्युः होत्रा पठ्यमाने प्रणवे प्रणवे एकैकमिध्मकाष्ठमाहवनीये अभ्यादध्यात् ।) समिद्ध इति प्रागतः सर्वमिध्ममेकवर्जमनुयाजाश्चेत्।

(होता) त्रिर्हिकृत्वोपांशु महाव्याहृतीरोंपूर्वाः सामिधेनीः प्रणवेणार्धर्चशः संदध्यात्।
अन्यत्राप्यर्धर्चेऽवस्येत्।

ॐ (उपांशु) हिं हिं हिं (उच्चैः) भूर्भुवः स्वरोऽम् ॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।

देवान् जिगाति सुम्नयोऽम् ॥ १ ॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवान् जिगाति सुम्नयो ऽम् ॥२॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवान् जिगाति सुम्नयो ऽम् ॥३॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषोऽम् ॥४॥

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन व्वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्योऽ ॥५॥

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्योऽम् ॥ ६ ॥

ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमा सिदर्शतः । समग्निरिध्यते वृषोऽम् ॥७॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तहविष्मन्त ईडतोऽम् ॥८॥

वृषणं त्वा व्वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहोऽम् ॥९॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतोऽम् ॥ १० ॥

समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्के शस्तमीमहोऽम् ॥११॥

समिद्धो अग्न आहुतदेवान् यक्षि स्वध्वर। त्वहि हव्यवाडसोऽम् ॥ १२ ॥

आ जुहोता दुवस्यताग्नि प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वꣳहव्यवाहनोऽम् ॥१३॥

वृणीध्व हव्यवाहनोऽम् ॥१४॥

(मा) आ जुहोता दुवस्यताग्नि प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वꣳहव्यवाहनो ऽम् ॥ १५॥

होता अग्नेमहांऽऽअसि ब्राह्मणभारत सततं पठेत्। **ॐ अग्ने महाँ असि ब्राह्मण** भारत। (अत्र यजमानस्य) आर्षेयं यथादि। पंचदश वा निगदः संपादयन् (अनुब्रूयात्) ।

ॐ देवेद्धः । मन्विद्धः । ऋषिष्टुतः। विप्रानुमदितः। कविशस्तः । ब्रह्मस□शितः । घृताहवनः।
प्रणीर्यज्ञानाम्। रथीरध्वराणाम्। अतूर्त्ता होता । तूर्णिर्हव्यवाट् । आस्पात्रं जुहूदैवानां। चमसो देवपानः ।
अराँऽऽइवाग्ने नेमिर्देवांस्त्वं परिभूरसि। आवह देवान्यजमानाय ।
ॐ अग्निमग्नऽआवह ॥ सोममावह ॥ अग्निमावह।

(उपांशु) अग्नीषोमौ (उच्चैः) आवह ॥

अग्नीषोमावावह ॥ देवांश आज्यपांश आवह। अग्निहोत्रायावह। स्वं महिमानमावह। आ च वह जातवेदः सुयजा च यज।

॥ पूर्वाघारः ॥

अनुवचनान्ते वेदेनाहवनीयं त्रिरुपवाज्य (वेदोपग्रहः) सुवेण पूर्वमाघारमाघारयति उपांशुः ।

(मनसा) ॐ प्रजापतये स्वाहा ॥ यजमानः इदं प्रजापतये न मम ॥

॥ अग्निसम्मार्जनम् ॥

पूर्वमाघारमाघार्याऽऽह अग्निमग्नीत्संमृष्टि इति। (अग्नीधे स्फ्यमिध्मसन्नहनं च समप्र्य प्रैषः ।)

ॐ अग्निमग्नीत्संमृढि ॥

(प्रेषितोऽग्नीत्) इध्मसन्नहनैरनुपरिधि सम्मार्श्वग्नेव्वाजजिदिति त्रिस्त्रिः परिक्रामम्। (स्फ्यं सव्येकृत्वा सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीं दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्च)

ॐ अग्ने व्वाजजिद्वाजन्त्वा सरिष्यन्तं व्वाजजित सम्माज्मि ॥ (दक्षिणतः)

ॐ अग्ने व्वाजजिद्वाजन्त्वा सरिष्यन्तं व्वाजजितः सम्मार्जिज्म ॥ (पश्चात्)

ॐ अग्ने व्वाजजिद्वाजन्त्वा सरिष्यन्तं व्वाजजितसम्मार्जिज्म ॥ (उत्तरतः)

तूष्णीमुपरि (त्रिः)। अपरमाहवनीयादञ्जलिं करोति नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्य इति दक्षिणत उत्तानम्। ॐ नमो देवेभ्यः ॥ ॐ स्वधा पितृभ्यः ॥

॥ उत्तराघारः ॥

अप उपस्पृश्य सुयमे म इति जुहूपभृतावादायोत्तरां जुहूं कृत्वा ।

ॐ सुयमे मे भूयास्तमस्क्कन्नमद्य देवेब्य आज्यसम्भ्रियासम् ॥

दक्षिणाऽतिक्रामत्यङ्घ्रिणाविष्णविति । ॐ अघ्रिणा व्विष्णणो मात्त्वावक्क्रमिषम् ॥

परीधीनपरेण सञ्चरो होष्यतः । सव्येनेतो दक्षिणेनामुतः ।

वसुमतीमित्यवस्थाय । ॐ व्वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्त्थेषं व्विष्णणो स्त्थानमसि ॥

इत इन्द्र इति जुहोत्युत्तराघारम्। इन्द्रायेति यजमानस्त्यागं कुर्यात् ।

ॐ इतऽ इन्द्रो व्वीर्य्यमकृणोदूर्द्धाद्धरऽआस्त्थात् । अग्ने व्वेर्होत्त्रं व्वेर्दृत्त्यमवतां त्वान्द्यावापृथिवीऽ अव त्त्वन्द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेब्यऽइन्द्र ऽआज्येन हविषाभूत्त्स्वाहा ॥ यजमानः- इदं इन्द्राय न मम ॥

आघार्यासः स्पर्शयन् स्रुचावेत्य जुह्वा ध्रुवासमनक्ति सञ्ज्योतिषेति ।

ॐ सञ्ज्योतिषा ज्योतिः (गच्छताम्) ।

॥ होतृवरणम् ॥

निधाय (स्रुचौ इतरां वेदोपगृहेण) इध्मसन्नहनान्यादायोश्रावयेत्याह ।

ॐ ओ३श्राश्रय ॥

अस्तु श्रौ३षडित्यग्नीत् । ॐ अस्तु श्रौ३षट् ॥ अथ प्रवृणीते (होतरमध्वर्युः अग्निर्देवो दैव्य इति ।)

ॐ अग्निर्देवो दैव्यो होता देवान्यक्षद्विद्वांश्चिकित्वान्मनुष्वद्भरतवत् (यजमान प्रवरनामोच्चारणम् यथा-भृगुवत् च्यवनवत् आप्नवान्वत् औरववत् जामदग्न्यवत्)

ब्रह्मण्वदा च वक्षद्ब्राह्मणाऽअस्य यज्ञस्य प्रावितारः । (उपांशु) अमुकशर्मा होता। (उच्चैः) मानुषः।

मानुषः इति श्रुत्वा (होता एतत्वेत्युपांशु पठेत्)।

(उपांशु) ॐ एतत् त्वा देव सवितर्वृणतेग्निहोत्राय सह पित्रा वैश्वानरेणाग्ने पूषन् बृहस्पते प्र च वद प्र च यज वसूना ँ रातौ स्याम रुद्राणामुर्व्यायास्वादित्याऽ अदितये स्यामानेहसो जुष्टामद्य देवेभ्यो वाचमुद्यासं जुष्टां ब्रह्मभ्यो जुष्टां नराश ँ साय यदद्य होतृवर्ये जिह्वां चक्षुः परापतत्। अग्निष्टत् पुनराभ्रियाज्जातवेदा विचर्षणिः ॥

षण्मोर्वीरमिति आत्मानमालभते ।

(उच्चैः) ॐ षण्मोर्वीर हसस्पान्त्वग्निश्च पृथिवी चापश्च वातश्चाहश्च रात्रिश्चेत्येता मा देवता आर्तेर्गोपायन्तु ॥ (उदकस्पर्शः)

इन्द्रमन्वेत्युपांशु पठेद्धोता। अध्वर्युमग्नीधं च संमृशति दक्षिणयोर ँ सयोः प्रादेशेन। (तौ च होत्रा) संमृष्टा उपविशतः ।

(उपांशु) ॐ इन्द्रमन्वारभामहे होतृवर्ये पुरोहितम्। येनायन्नुत्तमःस्वर्देवा अंगिरसो दिवम् ॥

(ततो होता) सन्नहनान्यादाय तैः सम्मार्टि मुखं त्रिः प्रदक्षिणम्। (सकृत् मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्।)

ॐ संमार्गोऽसि सं मा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन च मृष्टि ॥

अपसव्यम् (अपमार्गोऽसीति अप्रदक्षिणं सकृत् मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम् सम्मार्टि।)

ॐ अपमार्गोऽस्यप मा पाप्मना पापेन च मृष्टि ॥

(अप उपस्पृश्य ऐन्द्रीत्यावृत्य प्रदक्षिणम् । ॐ ऐन्द्रीमावृतमन्वावर्ते ॥

होतृषदानात्तृणमङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामादाय दक्षिणापरस्यां दिशि निरस्येत्।

ॐ निरस्तः परावसुः सह तेन यं द्विष्मः ॥ (उदकस्पर्शः) इदमहमिति होतृषदने उपविशति। ॐ इदमहमर्वावसोः सदने सीदामि ॥

(विश्वकर्मेति) जपन् उदङ् एजेत्। (किंचिदुत्तरतः चलेत्।)

ॐ विश्वकर्मस्तनूपा असि मा मोदोषिष्टं मा मा हि◌ꣳसिष्टमेष वाँलोकः ॥

अग्निमीक्षमाणः जपेत् (उपांशु)।

(उपांशु) ॐ विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ॥ प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥

अग्निर्होतेति उच्चैः पठेत् होता।

(उच्चैः) ॐ अग्निर्होता व्वेत्त्वग्नेर्होत्रं व्वेत्तु प्रावित्रसाधु ते यजमान देवता ॥

(उपांशु) ॐ योऽअग्निहोतारमवृथाः ॥

घृतवतीमित्यध्वर्यु प्रेरयेत् ।

(उच्चैः) ॐ घृतवतीमध्वर्यो स्रुचमास्यस्व देवयुतं विश्ववारामीडामहै देवांश्ईडेन्या न्नमस्याम नमस्यान्यजाम यज्ञियान् ॥

घृतवतीत्युक्ते स्रुचावादायाऽतिक्रम्याऽऽश्राव्याह समिधो यजेति पञ्च प्रयाजान्त्समिद्धतमे। यज यजेति शेषम्। ध्रुवस्तिष्ठन्। पूर्व पूर्वं वाऽभिक्रामम् ।

॥ प्रयाजाः ॥

वेदेर्दक्षिणत ईशानाभिमुखं तिष्ठन् अध्वर्युः श्रावयेति अग्नीधं प्रेषयेत्।

अध्वर्युः-ओ३श्राश्रय ॥

अग्नीत्-अस्तु श्रौ३ षट् ॥

अध्वर्युः समिधो यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे समिधः समिधो अग्न आज्यस्य व्यन्तुर वौ३षट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे अग्नेः प्रदेशे जुहूस्थाज्यस्य तृतीयांशं प्रक्षिपेत् ।

यजमानः नमम इति त्यागं कृत्वा एकोममेति वदेत् ।

इदं समिच्यो न मम ॥

एको ममैका तस्य योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः त्विषिमान् भूयासम् ॥

प्रतिवषङ्कारे होता मामऽआयुरित्यनेन उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् ।

ॐ मा मऽ आयुः प्रमोषीर्वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ पातम् ॥

अथ द्वितीयप्रयाजः । यज यजेति शेषम् ।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः - यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत् ।

ये यजामहे तनूनपादग्न आज्यस्य वेतुश्चौ३षट् ॥ २ वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः जुहूस्थाज्यस्य द्वितीयांशं प्रक्षिपेत्। यजमानः- इदं तनूनपाते न मम ॥ द्वौ मम द्वे तस्य योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः अपचितिमान् भूयासम् ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत्। ० मा मऽ आयुः ..... पातम् ॥

अथ तृतीयः प्रयाजः । अध्वर्युः ओ३श्रावयेति अग्नीधं प्रेष्य।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः - यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्। ये यजामह इडो अग्न आज्यस्य व्यन्तुश्चौ३ षट् ॥ वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः जुहूस्थाज्यं सर्वं प्रक्षिपेत्। यजमानः- इदम् इयो न मम ॥

त्रयो मम तिस्रः तस्य योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः यशस्वी भूयासम् ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

ततो चतुर्थः प्रयाजः। चतुर्थे प्रयाजे समानयनम्। उपभृतो सकाशात् अर्धमाज्यं स्पर्शमकुर्वन् जुह्वां निनयेत्। पुनः आश्रावयेत्यादि पूर्ववदेव।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३ षट् ॥ अध्वर्युः - यज ॥ ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे बर्हिरग्न आज्यस्य वेतुश्चौ३ षट् ॥ वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः जुहूस्थाज्यस्य अर्ध प्रक्षिपेत्। यजमानः इदं बर्हिषे न मम ॥ चत्वारो मम चतस्रस्तस्य योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ब्रह्मवर्चसी भूयासम् ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

अथ पञ्चमः प्रयाजः। अध्वर्युः आ३श्रावयति।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः- यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे स्वाहाऽग्निश्स्वाहा सोमश्स्वाहा अग्निः स्वाहा (उपांशु) अग्नीषोमौ (उच्चैः)

स्वाहाग्नीषोमौ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तुर वौ३षट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः जुहूस्थाज्यस्य सशेषं प्रक्षिपेत् ।

यजमानः - इदमग्नये सोमायाग्नये (उपांशु) अग्नीषोमाभ्यां (उच्चैः) अग्नीषोमाभ्यां देवेभ्य

आज्यपेभ्योऽग्नये स्विष्टकृते च न मम ॥

पञ्च मम न तस्य किंचन योऽस्मान्द्वेष्टि यं च व्वयं द्विष्मः अन्नादो भूयासम् ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा

आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

एत्य जुह्वाऽभिघारणं ध्रुवायाः हविषः उपभृतश्च।

ततो आज्यभागाभ्यां चरत्याग्नेयं सौम्येन। (आग्नेयमुत्तरपूर्वार्धे, दक्षिण पूर्वार्धे सौम्यम् ।)

॥ आज्यभागौ ॥

अध्वर्युः अग्नयेऽनुब्रूहीति होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेषयेत् । ॐ अग्नयेऽनुब्रूऽहि ॥ होता अग्निर्वृत्राणीति

पुरोनुवाक्यां पठेत् ।

ॐ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्रविणस्युविपन्यया ॥ समिद्धः शुक्रऽ आहुतोऽम् ॥

अनिधायावदायावदाय ध्रुवामभिघारयति। (अध्वर्युः ध्रुवायाः स्रुवेणाज्यं जुह्वां सकृत् तूष्णीमवद्येत्।

आज्यस्थाल्यास्तूष्णीं स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा आप्यायतां ध्रुवा इति मन्त्रेण ध्रुवामभिघारयेत्। एवं

चतुरवत्तिनः चतुर्वारमाज्यं जुह्वां ध्रुवायाः सुवेणावदाय आज्यस्थाल्यास्तूष्णीमाज्यं स्रुवेण पञ्चमं

ध्रुवामभिघारयेत्। पंचावत्तीनां पञ्चवारं आज्यं जुह्वां ध्रुवायाः सुवेणावदाय, स्थालीतः षष्ठं

ध्रुवामभिघारयेत्।)

ॐ आप्यायतां ध्रुवा हविषा घृतेन यज्ञं यज्ञं प्रतिदेवयज्यवः ।

सूर्य्याया ऊधो अदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् ॥

एवं ध्रुवां प्रपूर्य उत्त्थाय सव्येनातिक्रम्य यजतिस्थाने गत्वा आश्रावयेत् ।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः- अग्नि यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहेऽग्नि जुषाणो अग्निराज्यस्य वेतुश्धौर षट् ॥ वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः उत्तरपूर्वार्धे (ईशानभागे) आहवनीये जुहुयात्। यजमानः- इदमग्नये न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

सौमिकाज्यभागः- अध्वर्युः सोमायेति होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेषयति ।

ॐ सोमायानुब्रू३ हि ॥

ततो होता त्वश्सोमासीति पुरोनुवाक्यां पठेत् ।

ॐ त्वसोमासि सत्पतिस्त्वः राजोत व्वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतो३म् ॥

होत्रा पठ्यमाने सत्यध्वर्युः पूर्ववदेव ध्रुवायाः स्रुवेणाज्यं जुह्वां चतुर्वत्तं पंचावत्तं वा कृत्वा आप्यायां ध्रुवा.... इति मन्त्रेण ध्रुवामभिघार्य उत्त्थाय सव्येनातिक्रम्य यजतिस्थाने गत्वा पूर्ववत् आश्रावयेत्।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः - सोर्मयज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे सोमं जुषाणः सोम आज्यस्य हविषो वेतु३ वौ३षट् ॥ वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः दक्षिणपूर्वार्धे (आग्नेयभागे) आहवनीये जुहुयात्।

यजमानः- इदं सोमाय न मम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

॥ प्रधानयागः ॥

अध्वर्युः हविःसमीपमागत्य उपविश्य होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेरयेत्। ॐ अग्नयेऽनुब्रू३हि ॥ होता पुरोनुवाक्यां पठति ।

ॐ अग्निम्मूर्द्धा दिवः ककुत्त्पतिः पृथिव्याऽ अयम्। अपा रेता सि जिन्वतो३म् ॥

होत्रा पुरोनुवाक्यां पठ्यमानेऽध्वर्युः स्थालीतः जुह्वां स्रुवेण सकृदुपस्तीर्य आग्नेयपुरोडाशस्य मध्यात् पूर्वार्धात् (पंचावत्तीनो पश्चात् तृतीयं) श्रतावदानेनावदाय पुनः स्थालीतः स्रुवेण प्रत्युपस्तीर्य अवदानक्षताभ्यङ्गं कृत्वा सव्येनातिक्रम्य यजतिस्थानं गत्वा आश्रावयेत्।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः- अग्नि यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहेऽग्निं भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षाजुह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहांश्चौ३ षट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे आहवनीये जुहुयात्। यजमानः इदमग्नये नमम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

द्वितीयो यागः- पुरोडाशावन्तरेणाग्नीषोमा उपा ९श्वाज्यस्य। अध्वर्युः होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेरयेत् उपांशु।

ॐ (उपांशु) अग्नीषोमाभ्याम् (उच्चैः) अनुब्रू३हि ॥

होता पुरोनुवाक्यां पठति।

ॐ (उपांशु) अग्नीषोमाविमः सु मे शृणुतं वृषणा हवम्। प्रतिसूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः (उच्चैः) ओ ३म् ॥

होत्रा पुरोनुवाक्यां पठ्यमाने सत्यध्वर्युः ध्रुवायाः स्रुवेणाज्यं जुह्वां चतुर्वत्तं पंचावन्तं वा कृत्वा आप्यायतां ध्रुवा.... इति मन्त्रेण ध्रुवामभिघार्य उत्त्थाय सव्येनातिक्रम्य यजतिस्थाने गत्वा पूर्ववत् आश्रावयेत्।

अध्वर्युः-

ओ३श्राश्रय ॥

अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः-

(उपाशु) अग्नीषोमौ (उच्चैः)

यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे (उपांशु) अग्नीषोमौ जुषाणावग्नीषोमावाज्यस्य वीताम् (उच्चैः) वौ३षट् ॥

यजमानः- इदं (उपांशु) अग्नीषोमाभ्यां (उच्चैः) न मम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् ।

ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

तृतीयो यागः- अध्वर्युः हविः समीपमागत्य उपविश्य होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेरयेत्।

ॐ अग्नीषोमाभ्यामनुब्रू३ हि ॥

होता पुरोनुवाक्यां पठति।

ॐ अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः। सं देवत्रा बभूवथोऽम् ॥

होत्रा पुरोनुवाक्यां पठ्यमानेऽध्वर्युः स्थालीतः जुह्वां स्रुवेण सकृदुपस्तीर्य अग्नीषोमीयस्य पुरोडाशस्य मध्यात्, पूर्वार्धात् (पंचावत्तीनो पश्चात् तृतीयं) श्रृतावदानेनावदाय पुनः स्थालीतः सुवेण प्रत्युपस्तीर्य अवदानक्षताभ्यंगं कृत्वा सव्येनातिक्रम्य यजतिस्थानं गत्वाऽऽश्रावयति ।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः अग्नीषोमौ यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहेऽग्नीषोमौ युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ॥ युव॰ सिन्यूँ रभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुंचतं गृभीतां३ वौ ३ षट् ॥

यजमानः- इदमग्नीषोमाभ्यां नमम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

॥ स्विष्टकृद्यागः ॥

अध्वर्युः हविसमीपोपविश्य पुरोनुवाक्यार्थ होतारं प्रेषयति ॐ अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रू३ हि ॥

होता पुरोनुवाक्यां पठेत्।

ॐ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोजस्त्रया सूर्या यविष्ठ। त्वाः शश्वन्त उपयन्ति व्वाजो३म् ॥

यावद्धविरुत्तरार्द्धात्स्विष्टकृतः । अध्वर्युः स्थालीतः जुह्वां सुवेण सकृदुपस्तीर्य पुरोडाशयोः उत्तरार्धात् द्विरवदानं (चतुरवत्तिनः एकं) गृहीत्वा स्रुवेण जुह्वां स्थालीतः द्विरभिघार्य अवदानक्षतिमभ्यङ्गमकृत्वैव उत्थाय सव्येनातिक्रम्य यजतिदेशं गत्वा पूर्ववत् श्रावयेत्। अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः- अग्नि स्विष्टकृतं यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहेऽग्नि अस्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः प्रियाधामान्ययाड् सोमस्य प्रियाधामान्ययाङग्नेः प्रियाधामान्ययाङ् (उपांशु) अग्नीषोमयोः (उच्चैः) प्रियाधामान्ययाङग्नीषोमयोः प्रियाधामान्ययाद्देवानामाज्यपानां प्रियाधामानि। यक्षदग्नेर्होतुः प्रियाधामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्याऽ इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषता हविरिमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्त्रो

वक्षि देवतातिमच्छ। प्रति न ई सुरभीणि व्यन्तुर वौषट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे आहवनीये जुहुयात्। यजमानः इदमन्नये स्विष्टकृते न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥ ततो सर्वेषां प्रणीतोदकस्पर्शनम् नाध्वर्योः रुद्रियत्वादिति देवः । अध्वर्युः स्फ्योपग्रहेण जुहूं प्रस्तरे निधाय वेदोपग्रहेण उपभृतं निधाय ।

॥ भागपरिहरणम् ॥

(स्प्यं गृहीत्वा प्रणीतोदकेन) संचरमभ्युक्ष्य प्राशित्रमवद्यति यवमात्रं पिप्पलमात्रं वा (द्विरवदाय) अन्यतरत आज्यमुभयतो वाऽऽग्नेयात्। भागांश्च (षडवत्त, ब्रह्म, यजमान भागान्)। (उभयोः पुरोडाशयोः) पूर्वार्द्धात् दीर्घ प्रशीर्य पुरस्तात् ध्रुवायाः करोति । (प्राशित्रं द्वितीयेन पात्रेण अपिधाय) अध्वर्युः संचरेण ब्रह्मणे प्रदाय पूर्वेणैके। (प्राशित्रं प्रोक्षितेन होमसंचरेण प्राशित्रं ब्रह्मणे प्रदाय अप उपस्पृशेत् ।)

(ब्रह्मा अध्वर्युना समर्प्यमाणं प्राशित्रं) मित्रस्य त्त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे इति प्राशित्रं प्रतीक्षते ।

ॐ मित्रस्य त्त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

प्रतिगृह्यतामित्यध्वर्युः ब्रह्माणं प्रार्थयेत् । ॐ प्रतिगृह्यताम् ॥

देवस्यत्वेति प्रतिगृह्णाति (ब्रह्मा।)

ॐ देवस्य त्त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्ब्बाहुब्भ्यां पूष्णणो हस्ताब्भ्याम् । प्रतिगृह्णणामि ॥

पुनरादाय देवस्यत्वेत्यनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम् ।

(ब्रह्मा अनामिकांगुष्ठाभ्यां पात्रात् देवस्यत्वेति प्राशित्रभागं गृह्णाति ।)

ॐ देवस्य त्त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुब्भ्यां पूष्णणो हस्ताब्भ्याम् आददे ॥ अग्नेष्ट्वेति प्राश्नाति दन्तैरनुपस्पृशन्नत्र चेत् । ॐ अग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्नामि ॥

(पक्षे इडाप्राशनानन्तरं प्राशित्रप्राशनं विहितम्। पक्षेऽस्मिन् इडाप्राशनान्तं यावत् प्राशित्रं वेद्यामेव स्थापयेत्।)

(ब्रह्मा) प्रक्षाल्य पात्रं नाभिमालभते ।

ॐ या अप्स्वन्तर्देवतास्ता इदशमयन्तु स्वाहाकृतं जठरमिन्द्रस्य गच्छ। घसिना मे मा संपृक्था ऊर्ध्वं मे नाभेः सीदेन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि ॥ (उदकस्पर्शः)

अप उपस्पृश्येडां पंचावत्ताम् दक्षिणतो मध्याच्च यावद्धविः स्विष्टकृद्वदाज्यम् । इडा होत्रे प्रदायाऽविसृजन्

दक्षिणाऽतिक्रामति। इडां प्रतिगृह्य होतुः अङ्गुलिपर्वणी अनक्ति। अङ्केऽङ्गुलिपर्वणी ओष्ठयोर्निलिंपेदधरमधरेणोत्तरमुत्तरेण। अवजिघेदित्येके ।

अधरम्-ॐ मनसस्पतिना ते हुतस्याश्नामीषे प्राणाय ॥

उत्तरम्-ॐ व्वाचस्पतिना ते हुतस्याश्नाम्यूर्जऽ उदानाय ॥

(अध्वर्युः) अवान्तरेडामादधाति पूर्ववत् । इडां च। (होताच दक्षिणे पाणितलेऽ वान्तरेडामाधत्ते। अध्वर्युः ऐडात् पुरोडाशात् पञ्चावदानानि होतुः पाणौ स्थापयति । अध्वर्युणा चतुरवदाने कृते पञ्चममवदानं होता स्वयमेव गृह्णीयात्। इडां च प्रतिगृह्याङ्गुलिभिः अप्रसारिताभिरमुष्टीकृताभिः मुखमात्रे धारयन् (उपहूतमिति) जपेत् । शनैः (उपांशु) अवान्तरेडामुपह्वयोच्चैरिडामुपह्वयते। (उपहूतमित्युच्यमाने) सर्वेऽन्वारभन्ते ।

॥ इडोपाह्वानम् ॥

(उपांशु) **ॐ उपहूत रथंतर सह पृथिव्योप मा रथन्तर सह पृथिव्या ह्वयतामुपहूतं वामदेव्य सहान्तरिक्षेणोप मां वामदेव्यः सहान्तरिक्षण ह्वयतामुपहूतं बृहत्सह दिवोप मां बृहत्सह दिवा ह्वयतामुपहूता गावः सहर्षभा उप मां गावः सहर्षभा ह्वयन्तामुपहूता सप्तहोत्रा सौम्येनाध्वरेणोप मा सप्तहोत्रा सौम्येनाध्वरेण ह्वयतामुपहूतेडा ततुरिरुप मामिडा ततुरिर्द्धयतामुपहूतः सखा भक्ष उप मा सखा भक्षो ह्वयतामुपहूत हेगुपमा हेग्ध्वयतामुपहूतोऽग्निरुपहूतः ॥**

(उच्चैः) इडोपहूतोपहूतेडोपो अस्मां इडा ह्वयतामिडोपहूता ॥ (एवं होत्रा) इडोपहूतेत्युच्चमाने आग्नेयं बर्हिषदं करोति (यजमानः ।)

ॐ ब्रध्न पिन्वस्वायुर्मे धुक्ष्व प्रजां मे धुक्ष्व पशून्मे धुक्ष्व ब्रह्म मे धुक्ष्व क्षत्रं मे धुक्ष्व व्विशो मे धुक्ष्व योऽस्मान् द्वेष्टि यं च व्वयं द्विष्मस्तस्य प्रजया पशुभिराप्यायस्व ॥ (ततो यजमानः आग्नेयं चतुर्धा (आग्नयादिविदिक्षु) कृत्वा) बर्हिषि ऋत्विभ्य आदिशति । (प्रादक्षिण्येनाग्नेय स्थानादारभ्य ब्रह्मादिऋत्विग्भ्यः आदिशति ।)

इदं ब्रह्मणः इद होतुः इदमध्वर्योः इदमग्नीधः ॥ (ततो अपसव्यं कृत्वा भागानालभ्य) अत्रपितर इति यजमानो जपति।

ॐ अत्र पितरो मादयद्धं यथा भागमावृषायद्धम् ॥ विसृज्यामीमदन्तेति (जपति)।

ॐ अमीमदन्त पितरो यथा भागमाव्वृषायिषत ॥ (यजमानः सव्यं कृत्वा) एकैकमाहरति । ब्रह्मादयः

आहरामीति प्रतिगृह्णन्ति ।

यज.- इदं ब्रह्मणे ॥ ब्रह्मा - आहरामि ॥

यज.- इद होत्रे ॥ होता - आहरामि ॥

यज.- इदमध्वर्यवे ॥ अध्व.- आहरामि ॥

यज.- इदमग्नीधे ॥ अग्नी. - आहरामि ॥

ततो होता मानवीति उच्चैः पठेत्। द्यावापृथिव्योरुपह्वानेऽग्नीधे षडवत्तं (दद्यात् यजमानः)।

(उच्चैः) **ॐ मानवी घृतपद्युत मैत्रावरुणी ब्रह्मा देवकृतोपहूतोपहूता दैव्या अध्वर्व्यव उपहूता मनुष्याः। य इमं यज्ञमवान् ये च यज्ञपतिं वर्धानुपहते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावारी देवी देवपुत्रे। उपहूतोऽयं यजमान उत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूतो भूयसि हविष्करण उपहूतो देवा म इद हविर्जुषन्तामिति तस्मिन्नुपहूतः ॥ आशासने मयीदमिति यजमानो जपति।**

ॐ मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियन्दधात्त्वस्म्मान्त्रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्म्माक सन्त्वाशिषः सत्त्यानः सन्त्वाशिषः ॥

(प्रणीतोत्करावन्तरेण निष्क्रम्य) उपहूतां प्राश्नन्ति युक्ताः। यजमानश्च। (आदौ चतुर्धाकरणभागस्य भक्षणं तत इडाभागस्य। (तत्र अग्नीत्) प्राश्नात्युपहूता पृथिवीति। (पूर्व चतुर्धाकरणस्य भक्षणं ततः षडवत्तभागस्य तत इडाभागस्येति क्रमः । तत्र षडवत्तभागौ उपहूतेति मन्त्राभ्याम् ।

ॐ उपहूता पृथिवी मातोपमाम्पृथिवी माता हुव्वयतामग्निराग्नीध्रात्त्स्वाहा ॥

ॐ उपहूतो द्यौष्पितोपमान्द्यौष्पिता हुव्वयतामग्निराग्नीध्रात्त्स्वाहा ॥

(ततः सर्वे आचम्य यथागतं प्रत्यागत्य) पवित्रयोर्मार्जयन्तेऽपरेण वेदि सुमित्रियान इति। (ब्रह्मादि क्रमेण स्फ्योपग्रहेण ।)

ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयः सन्तु ॥

(ततोऽध्वर्युः) यजमानस्य प्राणापानौपातमिति प्रस्तरे ते (पवित्रे) करोति। तूष्णीं वा।

ॐ यजमानस्य प्राणापानौ पातम् ॥

अत्र वा ब्रह्मा (प्राशित्रं) प्राश्नाति। भागमस्मै परिहरति । यजमानभागं चाऽप्रोषिते। (पूर्व निर्दिष्टं ब्रह्मभागं आहवनीयं पूर्वेण ब्रह्मणे यजमानभागं अपरेण गार्हपत्यं यजमानाय च समर्पयेत्।)

॥ अन्वाहार्यसमर्पणम् ॥

अन्वाहार्यमभिघार्योद्वास्यान्तरा ब्रह्मयजमानौ हृत्वा वेद्यां निधायाऽऽलभते प्रजापतेरिति ।

ॐ प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाद्युदानव्यानौ मे पाद्युर्गस्यूर्ज मयि धेद्यक्षितिरसि मा मे क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिन् लोकऽइह च॥

अस्याः पौर्णमासेष्टेः समृद्ध्यर्थम् इमाम् अन्वाहार्यदक्षिणां ब्रह्मादिभ्यो ऋत्विग्भ्यः समभागेनाहं संप्रददे ॥

ततो यजामानः ब्रह्मादिभ्यो ऋत्विग्भ्योऽन्वाहार्य समर्पयति । सर्वे ऋत्विजः द्यौस्त्वेति प्रतिगृह्णन्ति ।

यज.- ब्रह्मण्यस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् ॥ ब्रह्मा. ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवीत्वा प्रतिगृह्णातु ॥

होता - ॐ द्यौस्त्वा ददातु.....॥ यज.- होतुस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् ॥

यज.- अध्वर्युस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् ॥ अध्वर्युः- ॐ द्यौस्त्वा ददातु.....॥

यज.- अग्नीद्यस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् ॥ अग्नीत्- ॐ द्यौस्त्वा ददातु.... ॥

सा दक्षिणा। उदगुद्वासयति हविश्च।

(अध्वर्युः) समस्योल्मुके समिधमादायाह ब्रह्मन्प्रस्थास्यामि (ब्रह्माणम्) । समिधमाधाय अग्निमग्नीत्संमृड्ढीति ।

ॐ ब्रह्मन्प्रस्थास्यामि ॥ एतं त इति सामिदामन्त्रितः प्रसौति (ब्रह्मा।) (उच्चैः) प्रतिष्ठेति ब्रूयाद्वा।

ॐ समिधमाधाय अग्निमग्नीत्संमृड्ढि ।

(उपांशु) ॐ एतन्ते देवसवितर्य्यज्ञम्प्राहुर्वृहस्प्पतये ब्रह्मणे ॥ तेन यज्ञमवतेन यज्ञपतिन्तेन मामव ॥ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्यबृहस्प्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टुंय्यज्ञ समिमन्दधातु ॥ व्विश्श्वेदेवासऽइहमादयन्ताम् (उच्चैः) ०३प्रतिष्ठ॥ ब्रह्मणा प्रतिष्ठेत्युक्ते अग्नीत् आहवनीये समिधमादधाति । एषा त इति होता अनुमन्त्रयते ।

ॐ एषा ते ऽ अग्ने समित्तया व्वर्द्धस्वचाचप्प्यायस्व ॥ व्वर्धिषीमहि च व्वयमाचप्प्यासिषीमहि ॥

(ततोऽग्नीत् उत्तरपार्श्वे स्थित एव) सम्मार्टि पूर्ववदपरिक्रामसकृत् सकृत् ससृवासमिति। संमृज्य सकृत्तूष्णीमुपरि ।

ॐ अग्ने व्वाजजिद्वाजन्त्वा ससूवासं व्वाजजित सम्माज्मि ॥

॥ अनुयाजाः ॥

(अध्वर्युः) ब्रह्मानुज्ञातोऽनुयाजैस्त्रिभिश्चरत्यौ पभृत्य समानीय। अतिक्रम्याऽऽश्राव्याह देवान्यजेति।

देवान्देवानिति वा सर्वत्र। प्रतीचो जुहोति। (त्रयोऽनुयाजाः प्रत्यक्संस्थाः होतव्याः ।)

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः - देवान्यज ॥ ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतुश्चौ३षट् ॥ यजमानः इदं देवायबर्हिषे न मम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

अथ द्वितीयोऽनुयाजः ।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्वय ॥

अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः- देवान्यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत् ।

देवो नराश सो वसुवने वसुधेयस्य वेतुश्चौ३षट् ॥ यजमानः इदं देवाय नराश साय न मम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

तृतीयोऽनुयाजः-

अध्वर्युः-

ओ३श्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥

अध्वर्युः - देवान्यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

देवो अग्निः स्विष्टकृत्सुद्रविणा मन्द्रः कविः सत्यमन्मा ऽऽयजी होता होतुर्होतुरायजीयानग्ने यान् देवानयाड्यां अपिप्रेयै ते होत्रे अमत्सत। ता ससनुषी

होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेम स्विष्टकृच्चाग्ने होताऽ भूर्वसुवने वसुधेयस्य नमोवाके वीहिश्चौ३षट् ॥

यजमानः- इदं देवायाग्नये स्विष्टकृते न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

(चतुर्थ समानीय प्राचीम् ।) आहवनीयादुत्तरतः उपविश्य अध्वर्युः औपभृतं शेषमाज्यं जुह्वां इदं देवेभ्यो न मम ॥ समानीय देवेभ्य इति आहवनीये जुहूयात् । ॐ देवेभ्यः स्वाहा ॥

॥ खुग्व्यूहनम् ॥

एत्य जुहूपभृतौ व्यूहत्यग्नेरग्नीषोमयोरिति जुहूं प्राचीं दक्षिणेनोत्तानेनाग्नीषोमौ तमिति इतरेणेतरां नीचा प्रतीचीम् ।

(यजमानः अध्वर्युः वा वेदेः पश्चादागत्य सव्येन पाणिना वेदं गृहीत्वा जुहूपभृतौ प्रेरयति ।)

तत्र अग्नेरग्नीषोमयोरिति दक्षिणहस्तेन उत्तानेन जुहूं प्रस्तरात् प्राचीम् प्रेरयेत्।)

ॐ अग्नेरग्नीषोमयोरग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं व्वाजस्य माप्रसवेन प्रोहामि ॥4 वेदोपग्रहपूर्वकं सव्यहस्तेन अधोमुखेन प्राङ्मुखीमेवोपभृतं अग्निरितिमन्त्रेण प्रतीचीं प्रेरयेत् ॥

ॐ अग्निरग्नीषोमावग्नीषोमौ तमपनुदन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो व्वाजज्यैनम्प्रसवेनापोहामि ॥ 5

अभ्युक्ष्य जुह्वा परिधीननक्ति यथापूर्वम्। वसुभ्य इति प्रतिमन्त्रम् ।

ॐ व्वसुब्भ्यस्त्वा (अनज्मि) ॥

ॐ रुद्रेब्भ्यस्त्वा (अनज्मि) ॥

ॐ आदित्येब्भ्यस्त्वा (अनज्मि) ॥

॥ सूक्तवाकः ॥

ततो जुहूं प्रस्तरादुत्तरतः सादयित्वा प्रथमपरिधिं गृहीत्वाऽऽश्राव्याह ।

अध्वर्युः-ओ३श्राश्वय।

अग्नीत्- अस्तु श्रौ३ षट् ॥

अध्वर्युः इषिता दैव्येति होतारं प्रेष्य।

ॐ इषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रू३हि ॥ (सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रू३हि इत्युक्ते होता इदं द्यावापृथिवी इति सूक्तवाकं पठेत्। (होत्रा सूक्तवाकं पठ्यमाने सत्यध्वर्योः) संजानाथामिति प्रस्तरादानम् ।

ॐ संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्त्वा वृष्ट्याऽवताम् ॥ विधृती स्थाने कृत्वा (आहवनीये प्रक्षिप्य) अनक्त्येनं व्यन्तु वय इति। अयं जुह्वामुपभृति मध्यं मूलमितरस्याम् (ध्रुवायाम्)।

ॐ व्यन्तु व्वयोऽक्त रिहाणाः ॥ (इति जुह्वामग्रम्)

ॐ व्यन्तु व्वयोऽक्त रिहाणाः ॥ (इति मध्यमुपभृति)

ॐ व्यन्तु व्वयोऽक्त रिहाणाः ॥ (इति मूलं ध्रुवायां)

मरुतामिति नीचैर्हत्वा, तृणमादायाऽनुप्रहरति (सूक्तवाकान्ते)।

ॐ मरुतां पृषतीर्गच्छव्वशा पृश्निभूर्त्वा देवं गच्छ ततो नो व्वृष्टिमा वह ॥

होता च इदं द्यावेति सूक्तवाकं पठेत् ।

ॐ इदं द्यावापृथिवी भद्रमभूदार्म सूक्तवाकमुत नमोवाकमृध्यास्म सूक्तोच्यमग्ने त्वꣳ सूक्तवागसि। उपश्रुती दिवस्पृथिव्योरोमन्वती तेऽस्मिन्यज्ञे यजमान द्यावापृथिवी स्ता शङ्गवी जीवदानू अत्रस्तू अप्रवेदे उरुगव्यूती अभयङ्कृतौ। वृष्टिद्यावा रीत्यापा शंभुवौ मयोभुवा ऊर्जस्वती च पयस्वती च सूपचरणा च स्वधिचरणा च तयोराविदि। अग्निरिद हविरजुषतावीवृधत महोज्यायोऽकृत। सोम इद हविरजुषतावीवृधत महोज्यायोऽकृत। अग्निरिद हविरजुषतावीवृधत महोज्यायोऽकृत ॥ (उपांशु) अग्नीषोमौ (उच्चैः) इद हविः (उपांशु) अजुषेतामवीवृधेतां (उच्चैः) महोज्यायः (उपांशु) अक्राताम्। (उच्चैः) अग्नीषोमाविद हविरजुषेतामवीवृधेतां महोज्यायोऽक्राताम् ॥ देवा आज्यपा आज्यमजुषन्तावीवृधन्त महोज्यायोऽक्त। अग्निर्होत्रेणेद हविरजुषतावीवृधत महोज्यायोऽकृत। अस्यामृधेद्धोत्रायां देवंगमायामाशास्तेऽयं अमुकशर्मा यजमानः। उत्तरां देवयज्यामाशास्ते भूयो हविष्करणमाशास्ते सजातवनस्यामाशास्ते दिव्यं धामाशास्ते यदनेन हविषाऽऽशास्ते तदश्यात् तदध्यात् तदस्मै देवा रासन्तां तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनुतां वयमग्नेः परिमानुषाः। इष्टं च वित्तं चोभे चैनं द्यावापृथिवी अ हसस्पातामिह गतिर्वामस्येदं च नमो देवेभ्यः॥

अध्वर्युः प्रस्तरस्य एकं तृणं परिशेष्य सूक्तवागान्ते प्रस्तरं प्रागग्रम् आहवनीये प्रक्षिपेत्।

हस्तेनाचरति। (प्रस्तरं हस्तांगुलिभिः प्रदिक्षाग्निदेशे प्रेरयेत्।)

अग्नीदाहानुप्रहरेति। ॐ अनुप्रहर ॥

(अध्वर्युः) प्रास्य तृणं चक्षुष्पा इत्यात्मानमालभते ।

ॐ चक्षुष्प्पा ऽ अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ (उदकस्पर्शः)

अथ संवादः ।

अग्नीत्- संवदस्व ॥ अध्वर्युः- अगानग्नीत् ॥ अग्नीत्- अगन् ॥ अध्वर्युः श्रावय ॥ अग्नीत्- श्रौषट् ॥

॥ शंयुवाकः ॥

ततोऽध्वर्युः स्वगादैव्येति होतारं प्रेषयेत्।

ॐ स्वगा दैव्ळ्या होतृब्भ्यः स्वस्तिर्मानुषेब्भ्यः शंयोब्रूहि ॥ शंयोब्रूहि इत्युक्ते शंयोर्वाकं प्रतिपद्यते।

(होता तच्छंयोरिति शंयुवाकं पठेत्।)

ॐ तच्छंयोरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषज शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

(होता) अनया इति प्रादेशं वेदिश्रोणौ निदधाति । ॐ अनया ॥

॥ परिधिहोमः ॥

परिधीननु प्रहरति यम्परिधिमिति प्रथमम्। (आहवनीये।)

ॐ यं परिधिं पर्य्यधत्था ऽ अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः । तन्तऽ एतमनुजोषं भराम्येषनेत्त्वदपचेतयातै ॥

इतरौ च युगपद्ग्नेः प्रियमिति।

ॐ अग्नेः प्रियं पाथोपीतम् ॥

॥ संस्रवाहुतिः ॥

स्रुचौ (जुहूपभृतौ) प्रगृह्णाति सस्स्रवभागा इति स स्रवान् जुहोति। (जुहूपभृतावादाय संस्रवान् आहवनीयोत्तरत उपविश्य जुहुयात्।)

ॐ सस्स्रवभागास्त्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां व्वाचमभिविश्वे गृणन्तऽ आसद्यास्म्मन्न्बर्हिषि मादयद्ध स्वाहा व्वाट् ॥

यज.- इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम ॥

घृताची इति धुरि निदधात्यनसि चेद् ग्रहणम्। स्म्ये पात्र्यां चेत्। (अध्वर्युः वेद्योत्तररांसे उदगग्रं स्प्यं निधाय तत्र प्रागग्रे जुहूपभृतौ घृताचीस्थेति निदध्यात्।)

ॐ घृताची स्त्थो धुर्योपात सुम्ने स्त्थः सुम्ने मा धत्तम् ॥ यज्ञ नमश्च त इति वेदिमालभते।

(स्प्योपग्रहपूर्वकमध्वर्युः)

ॐ यज्ञ नमश्चतऽ उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥

॥ पत्नीसंयाजाः ॥

वेदहोता, सुक्रुवमध्वर्युः, आज्यस्थालीमग्नीदादाय। पत्नी संयाजेभ्यो गार्हपत्यं गच्छन्ति । अध्वर्युः पूर्वदक्षिणेन गार्हपत्यमेत्य पूर्वेणाऽपरेणाऽन्तरेण पत्नीमेकेषाम्। उपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य। उपांशु चरन्ति। यजति सोमं, त्वष्टारं, देवानां पत्नीः, अग्निं गृहपतिमिति । (अध्वर्युः गार्हपत्यदक्षिणाम्यौरन्तरेण गत्वा गार्हपत्यस्य दक्षिणतः पत्न्याग्रे दक्षिणं जान्वाच्य ईशानाभिमुखमुपविश्य, गार्हपत्यस्य पश्चाद्धोता,

तस्योत्तरतः दक्षिणाभिमुखोऽग्नीदुपविशेत्। उपांशु चरन्ति।

अध्वर्युः दक्षिणं जान्वाच्य वेदोपग्रहेण सोमायानुब्रूऽहीति होतारं प्रेषयेत् ।

ॐ सोमायानुब्रूऽ हि ॥

ततो होता आप्यायस्वेति पुरोनुवाक्यां पठेत्।

ॐ आप्प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम व्वृष्ण्यम्। भवा व्वाजस्य सङ्गथोऽम् ॥

होत्रा पठ्यमाने अध्वर्युः आज्यग्रहणादि चतुरावत्ति पंचावत्ति वा संपाद्य सुवेण जुह्वामुपस्तीर्य आश्राव्याह।

अध्वर्युः- ओऽश्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौऽषट् ॥ अध्वर्युः- सोमं यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे सोम सन्ते पयासि समुयन्तु व्वाजाः सं व्वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ॥ आप्प्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवा स्युत्तमानि धिष्ष्वाऽ वौषट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे गार्हपत्ये जुहुयात्। यजमानः इदं सोमाय न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् ।

ॐ मा मऽ आयुः.....

पातम् ॥

अथ द्वितीयः पत्नीसंयाजः ।

अध्वर्युः त्वष्टेऽनुब्रूहीति होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेषयेत् । ॐ त्वष्टेऽनुब्रूऽ हि ॥

ततो होता इह त्वष्टारमिति पुरोनुवाक्यां पठेत् ।

ॐ इह त्त्वष्टारमग्र्यं विश्वरूपमुपद्व्वये। अस्माकमस्तु केवलोऽम् ॥

अध्वर्युः आज्यग्रहणादि चतुरावत्ति पंचावत्ति वा संपाद्य सुवेण जुह्वामुपस्तीर्य श्राव्याह।

अध्वर्युः- ओऽश्राश्वय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौऽषट् ॥ अध्वर्युः- त्वष्टारं यज ॥ ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहे त्त्वष्टारं तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्त्वष्टव्वि रराणः स्यस्व। यतो व्वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्ग्रावा जायते देवकामाऽ वौऽषट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे गार्हपत्ये जुहुयात्। यजमानः इदं त्वष्टे न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा

आत्मानमालभेत्। ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

अथ तृतीयः पत्नीसंयाजः । तृतीयेऽन्तर्धानं पुरस्तात् । पत्न्यन्वारभतेऽध्वर्युम् । पत्तन्त्यन्वारब्धोऽध्वर्युः देवानां पत्नीति होतारं प्रेषयेत् । ॐ देवानां पत्नीभ्योऽनुब्रू३ हि ॥ ततो होता देवानां पत्नीति पुरोनुवाक्यां पठेत् ।

ॐ देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये व्वाजसातये। याः पार्थिवासो या अपामपि व्बते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छतो३म् ॥

अध्वर्युः आज्यग्रहणादि चतुरावत्ति पंचावत्ति वा संपाद्य स्रुवेण जुह्वामुपस्तीर्य श्राव्याह।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः देवानां पत्नीर्यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत् ।

ये यजामहे देवानां पत्नीरुत ग्ना व्व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्ग्नाय्यश्विनी राट्।

आ रोदसि व्वरुणानी शृणोतु व्व्यन्तु देवीर्य्य ऋतुर्जनीनां श्चौषट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे गार्हपत्ये जुहुयात्। यजमानः इदं देवानां पत्नीभ्यो न मम ॥ होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥ अन्तर्धानकटं हस्तेनापनीय चतुर्थयागार्थं होतारं प्रेषयेत्।

अथ चतुर्थः पत्नीसंयाजः । अध्वर्युः अग्नयेति होतारं पुरोनुवाक्यार्थं प्रेषयेत् ।

ॐ अग्नये गृहपतयेऽनुब्रू३हि ॥ ततो होता अग्निर्होतेति पुरोनुवाक्यां पठेत् ।

ॐ अग्निर्होता गृहपतिः स राजा व्विश्वा व्वेद जनिमा जातवेदाः। देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्रयजतामृतावो३म् ॥

अध्वर्युः आज्यग्रहणादि चतुरावत्ति पंचावत्ति वा संपाद्य स्रुवेण जुह्वामुपस्तीर्य श्राव्याह।

अध्वर्युः- ओ३श्राश्रय ॥ अग्नीत्- अस्तु श्रौ३षट् ॥ अध्वर्युः- अग्नि गृहपतिं यज ॥

ये यजामहेति होता याज्यां पठेत्।

ये यजामहेऽग्निं गृहपति हव्व्यवाडग्निरजरः पिता नो व्विभुव्विभावा सुदृशीको अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मयक्संमिमीहि श्रवासि३ वौ३षट् ॥

वषङ्कारान्तेऽध्वर्युः समिद्धतमे गार्हपत्ये सशेषं जुहुयात्।

यजमानः- इदमग्नये गृहपतये न मम ॥

होता उदकं स्पृष्ट्वा आत्मानमालभेत् । ॐ मा मऽ आयुः..... पातम् ॥

॥ इडोपाह्वानम् ॥

पूर्ववदेव अध्वर्युः इडापात्र्यां स्रुवेण पञ्चकृत्वः स्थालीतः आज्यमवदाय प्राङ्मुखो होत्रे इडां प्रदाय होतारं पत्नीं च प्रदक्षिणी कृत्य होतुः पुरस्तात् प्रत्यंमुखोपविश्य होत्रा समर्पितामिडां प्रतिगृह्य इडात एव श्रुवेणाज्यमादाय होतुस्तर्जन्याया उत्तमे मध्यमे च पर्वणि स्रुवेण अंज्यात्। होता च अधरपर्वस्थितेनाज्येन अधरोष्ठं मनसस्पतीति मन्त्रेण ततः उत्तमपर्वस्थितेनाज्येन उत्तरोष्ठं वाचस्पतीति मन्त्रेण अनक्ति।

ॐ मनसस्प्पतिना ते हुतस्याश्नामीषे प्राणाय ॥

ॐ वाचस्प्पतिना ते हुतस्याश्नाम्यूर्ज उदानाय ॥

ततो होतुर्हस्तेऽध्वर्युः इडात एव सुवेण आज्यं चतुर्वारमवद्येत्। पञ्चममवदानं होता स्वयमेव गृह्णीयात्। ततोऽध्वर्युः इडां होत्रे समर्पयेत्। होता अप्रसारिताभिः अमुष्टिकृताभिः अंगुलीभिरिडां मुखमात्रे देशे धारयित्वा उपांशु उपहूतमिति पठेत्। उपह्वयमानायामिडायां होतारं सर्वेऽन्वारभेरन् ।

(उपांशु) ॐ उपहूत रथंतर सह पृथिव्योपमा रथन्तर सह पृथिव्या ह्वयतामुपहूतं वामदेव्य सहान्तरिक्षेणोप मां वामदेव्यः सहान्तरिक्षेण ह्वयतामुपहूतं बृहत्सह दिवोप मां बृहत्सह दिवा ह्वयतामुपहूता गावः सहर्षभा उप मां गावः सहर्षभा ह्वयन्तामुपहूता सप्तहोत्रा सौम्येनाध्वरेणोप मा सप्तहोत्रा सौम्येनाध्वरेण ह्वयतामुपहूतेडा ततुरिरुप मामिडा ततुरिर्द्धयतामुपहूतः सखा भक्ष उप मा सखा भक्षो ह्वयतामुपहूत हेगुपमा हेग् ह्वयतामुपहूतोऽग्निरुपहूतः ॥ इडोपहूतोपहूतेडोपोऽअस्मांऽ इडा ह्वयतामिडोपहूता। मानवी घृतपद्युत मैत्रावरुणी ब्रह्मादेवकृतोपहूतोपहूता दैव्याऽअध्वर्यवऽ उपहूतामनुष्याः। यऽ इमं यज्ञमवान्ये च यज्ञपर्ति वर्धानुपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावारी देवी देवपुत्रे। उपहूतेयं पल्युत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूता भूयसि हविष्करण उपहूता देवा म इद हविर्जुषन्तामिति तस्मिन्नुपहता ॥

आशासाने यजमानः मयीदमिन्द्र इति जपेत् ।

ॐ मयीदमिन्द्रऽ इन्द्रियं दधात्त्वस्म्मान्त्रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्म्माक सन्त्वाशिषः सत्त्यानः सन्त्वाशिषः ॥

ततः सत्विग्यजमानः प्रणीतोत्करावन्तरेण निष्क्रम्य इडां भक्षयित्वा आचम्य पुनः तथैवागत्य वेदेः पश्चादुपविश्य ब्रह्मादिक्रमेण दर्भैः उदकमादाय सुमित्रियान इति मार्जयेरन् ।

ॐ सुमित्त्रियानऽआपऽओषधयः सन्तु ॥

॥ संस्रवाहुतिः ॥

अध्वर्युः सुक्स्रुवं तूष्णीं प्रगृह्य अग्नेऽदब्धायो इति संस्रवान् गार्हपत्ये जुहुयात्।

ॐ अग्नेऽ दब्ध्यायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहिप्रसित्त्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽ अविषन्नः पितुकृणु सुषदा योनौ स्वाहा व्वाट् ॥

यजमानः - इदमग्नयेऽदब्ध्यायवेऽशीतमाय न मम ॥

॥ दक्षिणाग्नौ होमः ॥

सव्येनावृत्य दक्षिणाग्नौ जुहोत्यग्नय इति सरस्वत्या इति च।

(ततोऽध्वर्युः गार्हपत्यदक्षिणाग्न्योरन्तरेण बहिर्निष्क्रम्य अप्रदक्षिणं गार्हपत्यं परीत्य दक्षिणाग्नेरुत्तरत उपविश्य स्रुवेण सकृत् जुह्वामाज्यं गृहीत्वा वेदोपग्रहपूर्वकं अग्नये संवेशपतयेति तथा सरस्वत्या इति च आहुतिद्वयं दक्षिणाग्नौ जुहुयात्।)

ॐ अग्नये संव्वेशपतये स्वाहा ॥ यजमानः इदमग्नये संव्वेशपतये न मम ॥

ॐ सरस्वत्त्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ यजमानः इदं सरस्वत्यै यशोभगिन्यै न मम ॥ पिष्टलेपान् जुह्वां निधाय स्फ्योपग्रहपूर्वकम् दक्षिणाग्नौ जुहुयात्।

ॐ उलूखले मुसले यच्च शूर्पऽ आशिश्लिष दृषदि यत्कपाले उत्युषो विप्रुषः संजुहोमि सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥ यजमानः इदमग्नये न मम ॥

पत्नी वेदं प्रमुञ्चति वेदोऽसीति ।

॥ वेदयोक्रयोर्विमोकः ॥

ॐ व्वेदोऽसि येनत्त्वन्देव व्वेद देवेब्भ्यो व्वेदोभवस्तेन महां व्वेदो भूयाः।

योक्रं च प्रमामुंचामीति।

ॐ प्र मा मुंचामि व्वरुणस्य पाशाद्येन माऽबध्नात्सविता सुशेवः । ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां मा सहपत्या दधातु ॥

(होता) स्तृणात्यावेदेः। (गार्हपत्यस्य उत्तरतः आरभ्य वेदेः पूर्वांतं यावद्वेदं स्तृणाति ।)

ततः आहवनीये तूष्णीं समिधमादाय प्रणीतोत्करावंतरेण बहिर्निष्क्रामति ।

॥ समिष्टयजुर्होमः ॥

ध्रौवश्समिष्टयजुर्जुहोति देवागातुविद इति। (अध्वर्युः ध्रौवमाज्यं जुह्वां गृहीत्वा सव्यपाणौ कुशमुष्टिमादाय वातोद्देशेन जुह्वा समिष्टयजुः संज्ञकं होममाहवनीये कुर्यात्)

ॐ देवागातुविदो गातुंव्वित्त्वागातुमित। मनसस्प्पतऽ इमन्देवयज्ञ स्वाहाव्वातेधाः ॥

यजमानः- इदं वाताय न मम ॥

॥ बर्हिः होमः ॥

बर्हिः संवर्हिरिति। (वेद्यां स्तृतं बर्हिः सर्व जुह्वां निधायाऽऽहवनीये जुहुयात्।)

ॐ सम्बर्हिरक्ता हविषा घृतेन समादित्त्यैर्व्वसुभिः सम्मरुद्भिः । समिन्द्रो व्विश्वदेवेभिरक्तान्दिव्व्यन्नभो गच्छतु यत्तस्वाहा ॥ यजमानः- इदं दिव्याय नभसे न मम ॥

ततः अग्नीध्रः इध्मसन्नहनान्यादाय स्फ्योपगृहपूर्वकं रुद्रायेति जुहुयात्।

ॐ रुद्राय पशुपतयेस्वाहा॥ यजमानः इदं रुद्राय पशुपतये न मम ॥

॥ प्रणीताविमोकः ॥

वेद्यां प्रणीता निनयति परीत्य कस्त्वेति। (तदर्थं अध्वर्युः प्रणीतां वेदिमध्ये आसाद्य आहवनीयं प्रदक्षिणीकृत्य वेदिमध्ये उदंमुखः उपविश्य प्रणीतापः वेद्यां निनयति ।)

ॐ कस्त्त्वा व्विमुञ्चति स त्त्वा व्विमुञ्चति कस्म्मै त्त्वा व्विमुञ्चति तस्म्मै त्त्वा व्विमुञ्चति। पोषाय निनयमि ॥ (एष पौर्णमासिकोऽवभृथः ।)

॥ राक्षसभागः ॥

पुरोडाशकपालेन कणानपास्यत्यधः कृष्णाजिनःरक्षसामिति। (फलीकरणानंतरं स्थापितकणान् प्रथमकपाले निधाय तस्योपरि समीप एव करेण कृष्णाजिनं धारयन् । कृष्णाजिनस्याधस्तात् उत्करे कपालेनैव कणान् रक्षसां भागोऽसीति प्रक्षिपेत्।)

ॐ रक्क्षसां भागोसि ॥ (नात्रोदकस्पर्शः)

॥ पूर्णपात्रनिनयनम् ॥

(अध्वर्युः) पूर्णपात्रं निनयति परीत्य सन्ततं यजमानोऽञ्जलिना प्रतिगृह्णाति संवर्चसेति । मुखं विमृष्टे। (पूर्णपात्रजलेन यजमानः तूष्णीं मुखं प्रक्षालयेत् ।)

ॐ संव्वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्न्महि मनसा सा शिवेन। त्वष्टा सुदत्त्वो व्विदधातुरायोनुमाष्टुतन्वो यद्विलिष्टम् ॥

॥ विष्णुक्रमाः ॥

विष्णुक्रमान् क्रमते दिविविष्णुरिति प्रतिमन्त्रं पृथिव्यामितीतऽ ऊर्ध्वा वा। (यजमानः दक्षिणवेदिश्रोणेरारभ्य आहवनीयादर्वाक् प्राङ्मुखो दिविविष्णुरिति त्रिभिर्मन्त्रैः दक्षिणपादेन विष्णुक्रमसंज्ञकान् क्रमणान् कुर्यात्। क्रमता आहवनीयस्यातिक्रमणं न कर्तव्यं ।)

ॐ दिवि व्विष्णुर्व्यक्रस्त जागतेनच्छन्दसा ततो निब्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च व्वयन्द्विष्म्मः ॥

ॐ अन्तरिक्षे व्विष्णुर्व्यक्र स्त जागतेनच्छन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च व्वयन्द्विष्म्मः ॥

ॐ पृथिव्यां व्विष्णुर्व्यक्रस्त जागतेनच्छन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च व्वयन्द्विष्म्मः ॥

पूर्वेणाहवनीयं गत्वा दक्षिणाग्नेरुत्तरेण गार्हपत्यदक्षिणाग्योरन्तरालेन निष्क्रमेत्। (इति संचरविमोकः)

(गार्हपत्यस्य पश्चात् स्वासने उपविश्य) संयज्ञपतिराशिषेति भागं प्राश्नाति ।

ॐ सं यज्ञपतिराशिषा ॥

॥ ब्राह्मणतर्पणम् ॥

ब्राह्मणं तर्पयित वै ब्रूयात् यज्ञमेवैत्तर्पयतीति श्रुतेः ।

ॐ ब्राह्मणं तर्पयितवै ॥

ततो यजमानः- अस्याः पौर्णमासेष्टेः समृध्यर्थं यथाशक्त्या ब्राह्मणान्भोजयिष्ये। अथवा श्रुत्युक्तमेकं ब्राह्मणं भोजयिष्ये तेन श्रीयज्ञनारायणपुरुषः प्रीयन्तां न मम ॥

॥ ब्रह्मणः समिदाधानम् ॥

(ब्रह्मा स्फ्योपगृहपूर्वकं नमः कृतायेति आहवनीये) कर्मापवर्गे समिधमादधाति जुहोत्युपतिष्ठते वा।

ॐ नमः कृताय कर्मणे अकृताय कर्मणे नमः। अयाड्यज्ञं जातवेदा अन्तरः पूर्वो अस्मिन्निषद्य। सन्वसनि सुविमुंचाविमुंच घेद्यस्मभ्यं द्रविणं ज्ञातवेदः स्वाहा ॥ (नात्र यजमानस्य त्यागः)

ॐ सहैष यज्ञऽउवाचनग्नतायावैबिभेमीति का ते नग्नतेति अभित एव मा परिस्तृणीयुरिति तस्मादेतदग्निमभितः परिस्तृणन्ति तृष्णाया वै बिभेमीति का ते तृप्तिरिति ब्राह्मणस्य वै तृप्तिमनुतृप्येयमिति ॥ तस्मात्सःस्थिते यज्ञे ब्राह्मणं तर्पयित वै ब्रूयाद्यज्ञमेमैतत्तर्पयति । यत्कर्मणाऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्वान् स्विष्ट सुहुतं करोतु स्वाहा ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्याम् पञ्चभिरेवच।

हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख माप्नुयात् ॥

अनेने पौर्णमासेष्ट्याख्येन कर्मणा भगवान् यज्ञफलदाता यज्ञफलभोक्ता स्वर्गापवर्गदाता श्रीयज्ञपुरुषः प्रीयतां न मम।

सहायक ग्रन्थ सूची –

- यज्ञतत्त्वप्रकाश – वे.वि. चिन्नस्वामी शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली
- कात्यायन यज्ञपद्धति विमर्श – डॉ. मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली
- श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय – पं. युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
- कात्यायन श्रौतसूत्र – चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली
- आपस्तम्ब श्रौतसूत्र - चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी
- बौधायन श्रौतसूत्र (दर्शपूर्णमासभागात्मकम्) – राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in